7182

सोमसी

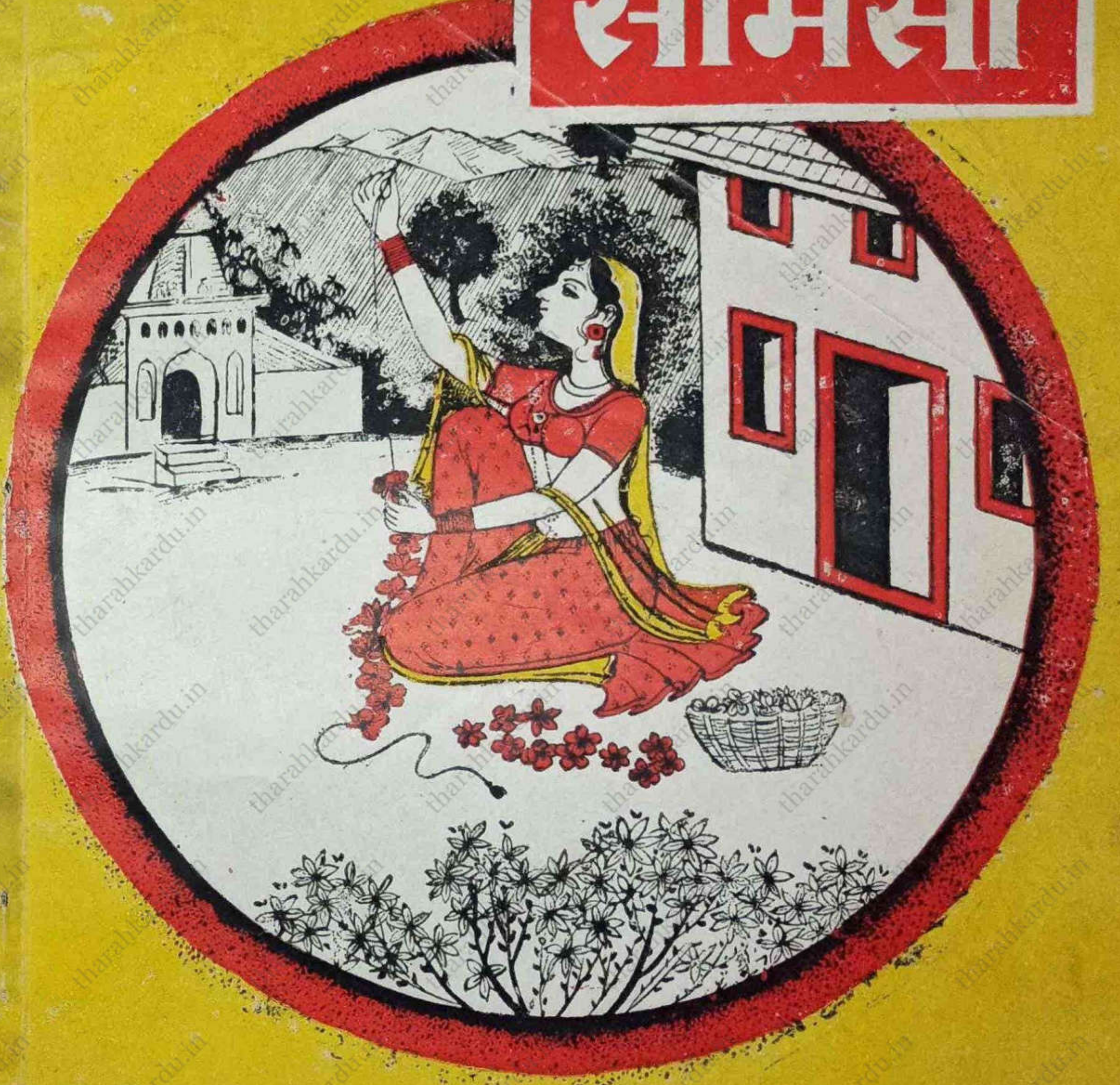

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी शिमला-१

tharahkardu.in

सोमसी

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी का त्रैमासिक मुख-पत्र

वर्ष 8	जुलाई, 1982	अंक 3

मुख्य सम्पादक :
अध्यक्ष अकादमी
सन्त राम शर्मा

सम्पादक :
मौलू राम ठाकुर
सचिव

सहयोगी :
सरोज सांख्यान
सुदर्शन पटियाल

आवरण :
ओम प्रकाश

३१

जनवरी, अप्रैल, जुलाई, तथा अक्तूबर में प्रकाश्य।

लेखक के विचारों तथा दिए गए तथ्यों से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं।

वार्षिक चन्दा १२ रु०

एक प्रति ३ रु०

प्राप्ति स्थान :

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी,

पीच ब्लाजम काटेज शिमला-१७१००२

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	हिमाचल प्रदेश की एक महान् प्रतिभा	डॉ० दिनेश चन्द्र अग्रवाल	१
२.	शिमला जनपद में नाग पूजा परम्परा	श्री हरिराम जस्टा	६
३.	फ़ारसी और संस्कृत अवसर्ग (एफ़िक्स) साम्य	डॉ० लक्ष्मीशंकर गुप्त	१६
४.	पहाड़ी गांधी बाबा कांशी राम : जीवन एवं साहित्य	डॉ० गौतम शर्मा 'व्यथित'	२१
५.	लोक नृत्य—तिल चौली	प्रेम कुमार शर्मा	३१
६.	तीर्थ स्थल मार्कण्डे और व्यास गुफा	राम लाल पाठक	३५
७.	बापू के सत्य के प्रयोग	श्री सन्त राम 'वत्स्य'	३७
८.	भाई चाल	श्री शंकर लाल शर्मा	४१
६.	फागली : देवगाथा और भविष्यवाणियों का पर्व	श्री सुदर्शन वशिष्ठ	४५
१०.	काम्पू	श्री पन्ना लाल जोगटा	४७
११.	ब्रह्मौरी जन जीवन की एक झलक जान्वर जाणा जीणा	श्री भक्त राम द्विवेदी	५४
१२.	पहाड़ी लोक गीत एवं नृत्य	श्री ओम प्रकाश शर्मा	७१
१३.	भारतीय भाषाओं का अधिष्ठान पंचम विश्व पुस्तक मेला	श्री नरेन्द्र कुमार	७३
१४.	मध्यकालीन रोमांस	डॉ० मैथिली प्रसाद	७५
१५.	बदलते सामाजिक मूल्य और आधुनिक हिन्दी नाटक	डॉ० ओम प्रकाश सारस्वत	८१

सम्पादकीय

हिन्दुस्तान के मशहूर शायर इकबाल ने कहा है :-

कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन दौरे-जमां हमारा ।

यह "कुछ बात" क्या है, इन्हें समझना भारत वासियों के लिए कोई कठिन काम नहीं है। भारतवर्ष ऋषि-मुनियों, सन्त महात्माओं, गुरु मनिषियों की धरती रही है। आदि महर्षियों ने वेद ब्राह्मण, उपनिषद और पुराणों के माध्यम से भारतीय समाज को वह जीवन-पद्धति प्रदान की है कि हज़ारों वर्ष बीतने के बाद भी आज वे सिद्धान्त बीसवीं शताब्दी के समाज के लिए उतने ही अनुकूल, व्यवहारिक और लाभदायक हैं जितने वे आदिकाल में थे। वेदों को ससार के विद्वान एक-मत से सबसे प्राचीन ग्रन्थ मानते हैं और वेदों में जो जीवन सिद्धान्त दर्शाए गए है वे विश्व के लिए आकर्षण के विषय हैं। गीता को भारतवासी ही नहीं विदेशियों ने भी अपने जीवन का ही नहीं मृत्यु का भी शान्ति का स्रोत माना है।

आर्य-ऋषियों के वर्ण- आश्रम धर्म ने भारत के समाज को प्राचीन काल से लेकर सुगठित सुव्यवस्थित रखा है। इसी सुदृढ़ व्यवस्था के कारण भारत देश ने सदियों तक गुलाम रहने के बाद भी अपने अस्तित्व को बनाए रखा है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष हमारी संस्कृति के चार मूल भूत स्तम्भ रहे हैं। यहां धर्म से अभिप्राय किसी जाति धर्म से नहीं है। मजहब की भावना बहुत देर बाद की है। हमारे प्राचीन ग्रन्थ और साहित्य धर्म को मानव जीवन का अंग और समाज में व्यवहार का आधार मानते हैं। धीरज, क्षमा, दम (निवृति) चोरी न करना, मन की शुद्धि, इन्द्रियों पर काबू, बुद्धि, विद्या सचाई और क्रोध न करना धर्म के दस लक्षण माने गए हैं। अर्थ की भावना धनोपार्जन नहीं हैं। हमारे सन्तों ने अर्थ की कामना केवल इतनी की है कि "साईं इतना दीजिए जामे कटुम्ब समाए, मैं भी न भूखा रहूं साधु न भूखा जाए"। काम वासना पर पूर्ण काबू करके तन और मन को शुद्ध कार्य के प्रति लगाना ही सच्चा कार्य होता है तथा जीवन का एक मात्र उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति है।

हमारी संस्कृति के ये चार मूल आधार धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सर्वदा विकासोन्मुखी हैं। यह बहुतों के सुख के लिए आत्म सुख को समर्पित करने की भावना जागृत करते हैं। भारतीय समाज में आदिकाल से लेकर "बहु-जन-सुखाय, बहु-जन-हिताय" के असूलों को अपनाया है और मान्यता दी है। इसी "बहुजन-हित" की भावना में ही हमारी एकता और समानता के गुण आरक्षित है। भारतवर्ष में आदिकाल से लेकर विभिन्न जातियां, धर्म, सम्प्रदाय, समुदाय पनपते और विकसित होते रहे हैं। विभिन्न विचार-धाराओं के होते हुए भी उनमें भ्रातृ-भावना सर्वदा मूल में रही है। इसीलिए हमारे ऋषियों ने विश्व को एक कटुम्ब माना है। विश्व-बन्धुत्व की भावना ने हमारे समाज

को आज तक एक लड़ी में पिरोए रखा है। विभिन्न प्रकार के सम्प्रदाय और धर्म एक माला के बहुरंगी फूल के समान सुसज्जित रहे हैं। इसीलिए भारतीय संस्कृति को सम्मिश्रित संस्कृति' कहा गया है। यहां पनेक धर्म, अनेक जातियां, अनेक सम्प्रदाय, अनेक भाषाएं समान रूप से फलते-फूलते रहे हैं। अनेकता में एकता, विविधता में साम्यता तथा भिन्नता में समानता की भावना ने ही आज तक भारत की हस्ती को मिटने नहीं दिया है। रोम, ईरान, मिश्र जैसी अनेक प्राचीन संस्कृतियां इतिहास से मिट गई हैं परन्तु भारतीय संस्कृति आज भी विश्व के लिए शान्ति का स्रोत और आकर्षण का केन्द्र बना है। बीसवीं सदी के इस उत्तरार्ध में जब मानव चन्द्रमा पर भी पहुंच चुका है संसार सच्चे सुख और सही शांति के लिए भारतवर्ष की ओर निहार रहा है।

इसी में हमारा बड़प्पन और इसी में देश का उज्जवल भविष्य आरक्षित है। इस गौरव को हम तब कायम रख सकते हैं जब हम स्वार्थ की भावना को त्याग कर परमार्थ की परम्परा को अधिमानता देते हैं। पर-हित में लोक हित की भावना निहित है और लोक-हित को प्रथम स्थान देने से ही हमारे समाज की अनेक समस्याएं स्वतः सुलझ जाती हैं। इसी से भावात्मक एकता और राष्ट्रीय अखंडता को बल मिलता है। विभिन्न बोलियां, विभिन्न परम्पराएं समाज को कमजोर नहीं बनातीं। वे हमारी सुदृढ़ता की भावना को सबल बनाती हैं। केवल आपसी मेल-मिलाप, पारस्परिक सौहार्दयता और मैतृक भावना को हमें पूर्ण आदर देना जरूरी है।

भारत देश को आज अनेक प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। इन समस्याओं का हम तभी समाधान कर सकते हैं जब हम राष्ट्र की एकता को प्रमुख रखते हुए विभाजन की नीतियों से दूर रहें। आज की भारतीय प्रशासनप्रणाली समाजवादी लोकतन्त्र पद्धति पर आधारित है। हमारे संविधान के निर्माता देश की संस्कृति की विविधता से भली भांति परिचित थे। वे इस विविधता को सबल रखने की मर्यादा को भी जानते थे। इसीलिए हमारा संविधान धर्म-निर्पेक्षता को आधार मान कर सभी धर्मों को पनपने की स्वतन्त्रता देता है; ऐसी ही मान्यता देश की विभिन्न भाषाओं को प्राप्त है। सब धर्मों की स्वतन्त्रता से ही भारतीय समाज सुदृढ़ बन सकता है परन्तु धर्म निर्पेक्षता में धर्मान्धिता के लिए कोई स्थान नहीं है। सभी धर्म एक स्थान पर आ मिलते हैं जिसे 'अहिंसा परमोधर्म': कहा गया है। यही बात भाषाओं के क्षेत्र में भी सत्य है। प्रत्येक भाषा की समृद्धि में ही राष्ट्रीय भाषा को बल मिलता है। कोई भी भाषा किसी दूसरी भाषा की प्रतिद्वन्द्वी नहीं है। सभी एक दूसरे की पूरक हैं। इसलिए भाषाओं के आधार पर विरोध खड़ा करना कदापि उचित सिद्ध नहीं हो सकता।

एम० आर० ठाकुर

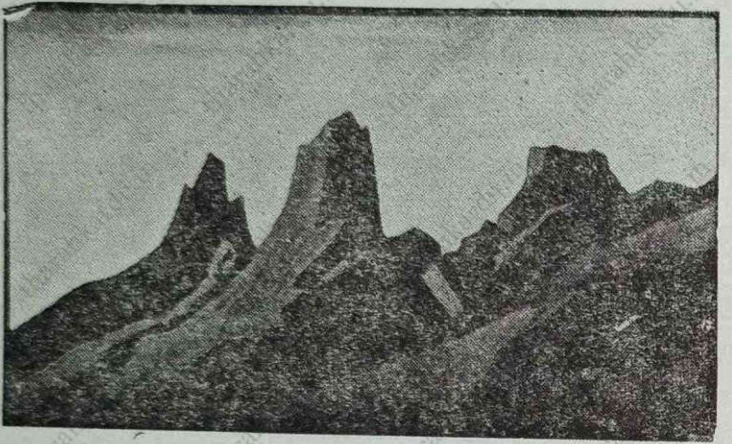

नग्गर का दुर्ग

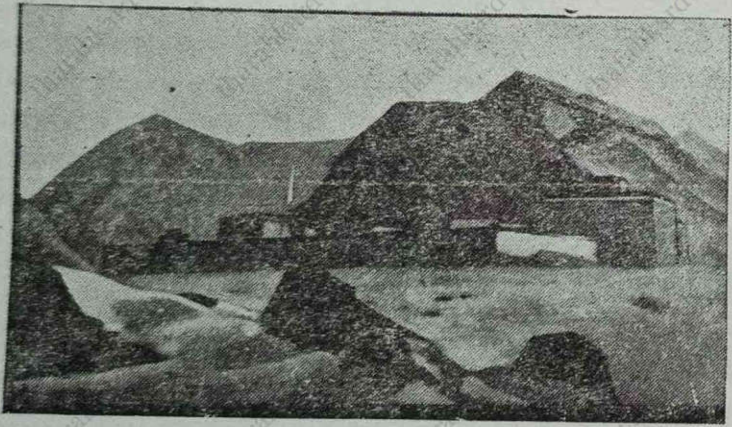

रोरिक हाऊस

हिमाचल प्रदेश की एक महान प्रतिभा

—डॉ० दिनेश चन्द्र अग्रवाल

भारतीय चित्रकला ने अपना स्वर्णयुग अजन्ता की भित्तिचित्रावली में देखा था, किन्तु उसके सदियों बाद पुनः उसकी स्वर्णिम आभा पहाड़ी चित्रकला में प्रस्फुटित हुई थी। वास्तव में यदि परखा जाय तो यह कहना अनुचित न होगा कि अपने समकालीन युग की भारतीय सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, वैचारिक तथा कलात्मक छवि की जितनी सच्ची स्वभाविक तथा सुन्दर अभिव्यक्ति पहाड़ी चित्रकला ने कर डाली है, उतनी कभी नहीं हुई। सहस्त्रों उत्कृष्ट कलाकृतियां भारतीय कला को देकर उसके कला कोष की अभिवृद्धि की है। यही कारण है कि आज विदेशों के अधिकांश कलाविद तथा कलाप्रेमी पहाड़ी चित्रों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हैं। जब चर्चा होती है पहाड़ी चित्रकला की तो हिमाचल प्रदेश का भी नाम स्वतः ही साथ में जुड़ जाता है। हिमाचल प्रदेश की इस कलात्मक उपलब्धि तथा असीम प्राकृतिक सौन्दर्य ने मिलकर, भारत के इस भू-भाग में ऐसा आकर्षण भर दिया है कि बहुत समय से अनेक विदेशियों का आगमन यहां पर होता ही रहा और उन पर ऐसा सम्मोहन चढ़ा कि वे यहीं के होकर रह गये। इन विदेशियों में से ही एक थे निकोलस रोरिक—अपने आप में एक अद्वितीय महान प्रतिभा। आज उनकी केवल स्मृति ही शेष है जिसे हिमाचल प्रदेश की कुल्लू घाटी अपने आँचल में असीम प्यार से संजोये हुए है। यह अमिट स्मृति है—"रोरिक हाऊस" जो भारत माँ तथा उसके महान रूसी मित्र के अमर प्रेम की प्रतीक बन चुकी है। इसी भवन में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कलाकार रोरिक की अनेक विशिष्ट कृतियों को संगृहीत किया गया है। यहीं पर उसकी अनेक विश्वविख्यात कृतियों का सृजन हुआ था। रोरिक का यह नीड़ कुल्लू घाटी के नग्गर गाँव में है। एक दुर्ग भी है नग्गर में जिसे सोलहवीं शताब्दी में राजा सिद्ध सिंह ने बनवाया था, इस दुर्ग के निकट ही है रोरिक हाउस जिसका निर्माण वहाँ के जमींदार कर्नल रेमिक ने अपने लिये कराया था। बाद में मण्डी रियासत के राजा ने खरीद लिया था तथा सन् १९२० ई० में इसे मण्डी के राजा से निकोलस रोरिक ने खरीदा। इसके चारों ओर लाल सेब और देवदारु के जंगलों से भरी घाटी, दूध सी सफेद धौला-धार की ऊंची शिखर श्रृंखला, सूर्य के आलोक से थिरकते हिमानी रंग, प्रकाश व छाया की आँख मिचौनी, अविरल गति से झरते बहते झागदार झरने व नदियाँ, मन्दिरों में घण्टियों की गूंज व टिम-टिमाते दीपक, उछलते-कूदते भेड़-बकरियों के मेमने तथा यहाँ के निवासियों के अल्हड़पन ने, अपनी जन्मभूमि सेण्ट पीटर्सबर्ग से विश्व भ्रमण को निकले इस जिज्ञासु कलाकार रोरिक के कदमों को बरबस रोक लिया था और बेगाना सा कर दिया था उसे। फिर तो वह ऐसा मन्त्रमुग्ध हुआ कि अपने देश लौट जाने का मोह भी छूट गया।

रोरिक का जन्म ६ अक्तूबर, १८७४ को रूस में सेण्टपीटर्स नगर के एक अभिजात्य परिवार में हुआ था। पिता बैरिस्टर थे किन्तु माँ की कलाभिरुचि उन्हें विरासत में मिली थी। स्कूली शिक्षा के बाद सेण्टपीटर्सबर्ग विश्वविद्यालय में ही उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की, जहाँ पर कला-दर्शन, इतिहास, पुरातत्त्व तथा संस्कृति आदि का गहन अध्ययन किया। तब तक इटली के महान कलाकार लियोनार्दो दि विन्सी तथा माइकेल एंजिलो की कला उनके अन्तराल की गहराइयों में बैठ चुकी थी तथा उन महान कलाकारों की कला को अपनी तूलिका में उतार लेने व अपनाने के स्वप्न वे देखते थे। तत्पश्चात् उन्होंने विदेशों में अपनी शिक्षा प्राप्त कर अपने ज्ञान में अभिवृद्धि की। उन्होंने रूस, स्वीडन, डेनमार्क, पेरिस, फिनलैण्ड, इंगलैण्ड, अमेरिका, मध्य एशिया, मंगोलिया, तिब्बत, चीन तथा जापान आदि देशों का विस्तृत भ्रमण किया था और अन्त में जब वे सन् १९२८ में एशिया की प्रसिद्ध संस्कृति तथा अध्यात्म के अध्ययन हेतु भारत आये तो उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि जिस दिव्य सौन्दर्य तथा ज्ञान की खोज में वे इधर-उधर भटक रहे थे, वह यहीं है। हिमालय के विस्तृत आंचल में उन्हें दिव्य सौन्दर्य तथा प्रकृति के विराट रूप के दर्शन की जो अनुभूति हुई थी, वह उनके ही शब्दों में इस प्रकार अभिव्यक्त हुई थी -- "नो वेअर, इज़ देअर सच ग्लिमर, सच स्पिरिचुअल सटाइअटि एज अमिड द् प्रैशस स्नोज आफ द् हिमालयाज़, आइ एम हैप्पी टु हैव द् प्रिविलेज ऑफ डिस्सेमिनेटिंग थ्रू आउट द् वर्ल्ड द् ग्लोरि आफ हिमालयाज़— द् सेक्रेड जूअल आफ इंडिया"। (अर्थात् जैसी आभा तथा अध्यात्म की तृप्ति हिमालय के दुर्लभ तुषार में है वैसी कहीं भी नहीं। मैं सुखी हूं कि मुझे भारत के परम पवित्र रत्न के प्रभा-मण्डल को सम्पूर्ण विश्व में विकीर्ण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।)

हिमालय के अनन्य प्रेमी, अपूर्व उपासक तथा प्रकृति के विलक्षण चितेरे रोरिक ने प्रकृति के जिस वैराट्य तथा शाश्वत चैतन्य का अनुभव किया, वह उनकी कलाकृतियों में रूपायित होकर थिरक उठा। उनकी चित्रित रचनाओं से ऐसा अनुभव होता है, मानो रोरिक ने विशाल हिमालय को अपने हृदय में समेट लिया था। उन्होंने उसे विविध संवेगों के परिप्रेक्ष्य में अनुभूत किया था और अपनी कला की नयी भाव-भूमिका खोजी थी। इसी प्राबंल्य प्रेम के कारण उनको 'मास्टर ऑफ द् माउण्टेन्स' भी कहा गया। उनकी साधना व सृजन का एक ही लक्ष्य था—असीम तथा अमर के दर्शन जो उन्हें हिमालय से प्राप्त हुए थे, उसी अदृश्य सत्ता की एक झलक मात्र के दर्शन पाने के लिये अनेक साधकों तथा ऋषियों ने दीर्घ साधना व तपस्या की थी। इस प्रकार रोरिक ने हिमालय से नहीं वरन् भगवान् से साक्षात्कार किया था। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी स्वयं को हिमालय ही बताया था (यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणाम् हिमालयः ॥—श्रीमद्भागवतगीता—१०/२५)। उन्होंने न केवल हिमालय की दिव्यता तथा महानता को ही प्रतिरूपित किया वरन् अपने व्यक्तित्व एवं हिमालय के तादात्म्य को भी प्रतिबिम्बित किया उनकी कुछ विशिष्ट कला-कृतियों में 'रिमेम्बर', 'ड्राप्स ऑफ लाइफ', 'पर्ल्स ऑफ स्ट्राइविंग', 'साइन्ज (Signs) आफ मैतरेय', 'बैनर्स ऑफ द् ईस्ट' तथा 'तिब्बतन स्ट्राँग होल्ड्स' को अन्तर्राष्ट्रीय प्रशंसा व ख्याति प्राप्त हुई है। उन्होंने अनुभूतियों और आंदोलित संवेगों को न केवल चित्रों में साकार किया, वरन् शब्दों के माध्यम से भी अभिव्यक्त किया, जो उनके ग्रन्थों---'अलटई हिमालय', 'पाथ्स ऑफ एशिया',

'शम्भाल', 'फाइअरि (Fierry) स्ट्रांग होल्ड', गेट्स इन्टु फ्यूचर', 'फ्लेम इन चेलिस', 'हार्ट ऑफ एशिया', ब्यूटिफुल यूनिटि', 'हिमालयाज द् अबोड ऑफ लाइट' तथा 'हिमवात' में विशेषतः उल्लेखनीय हैं। भारत प्रवास में बनी उनकी अनेक कलाकृतियां वाराणसी के भारत कला भवन, मद्रास के त्रिवेन्द्रम संग्रहालय, इलाहाबाद के शासकीय संग्रहालय, कुल्लू घाटी में नग्गर के रोरिक हाउस तथा रूस की कई कला-दीर्घाओं में संग्रहीत हैं।

ऐसा भी नहीं था कि वह प्रकृति के इस प्रेम में दीवाने होकर समाज से दूर या एकाकी हो गये थे, वरन् व्यापक मानव-कल्याण की भावना के प्रति भी वह अत्यन्त संवेदनशील थे। प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व उन्होंने जिन चित्रों का सृजन किया था, उनमें से बहुचर्चित--- 'द् ल्युरिड ग्लेअर' 'द् लास्ट एंजिल', 'ओमिनस साइन्ज (Signs), 'ह्यूमन डीड्स', 'डूम्ड सिटि' तथा 'द् सिटि ऑफ सरपेन्ट्स' ऐसी कलाकृतियाँ हैं जिनमें युद्ध के परिणाम स्वरूप होने वाले विध्वंस तथा मानव के संहार से उत्पन्न मानवीय उत्पीड़न और वेदना को साकार किया गया गया है। उनका अटूट विश्वास था कि मानव जाति को शान्ति तथा कल्याण के पथ पर ले जाने के लिये नेतृत्व करने का सामर्थ्य केवल कला में ही है। उनकी धारणा उनके ही शब्दों में इस प्रकार थी—"आर्ट इज टु क्रियेट ब्यूटि.........द् प्लैस ऑफ हैप्पिनैस फार ह्य मिनिटि लाइज़ इन ब्यूटि। हैन्स वी एसर्ट फॉर आर्ट टु बी द् हाइयैस्ट स्टिमुलस फॉर द् रोजनरेशन ऑफ द् स्पिरिट।" (कला सौन्दर्य के सृजन के लिये है...... मानवता के लिये सुख की धरोहर सौन्दर्य में ही है। अतएव हम आत्मा के पुनर्जन्म के लिये सब से महान् उद्दीपक बनने के लिये कला की रक्षा करते हैं)। उन्होंने जन-कल्याण के लिये न केवल कलात्मक सृजन किया वरन् ऐसा कार्य किया जिसके लिये सम्पूर्ण विश्व सदैव ऋणी रहेगा। उन्होंने एक अन्तर्राष्ट्रीय संधि 'रोरिक पैक्ट' के रूप में सर्व हिताय विश्वव्यापी आह्वान किया जिसके अन्तर्गत परस्पर राजनैतिक वैमनस्य और विनाशकारी युद्ध-विभीषिका से बहुमूल्य कला व सांस्कृतिक परम्पराओं तथा संस्थाओं का संरक्षण हो सके। विश्व के अधिकांश सभ्य देशों ने इसकी अनिवार्यता को स्वीकारा और अपने द्वेषों को भुला कर रोरिक पैक्ट को सम्मानित किया। सन् १९३५ में संयुक्त राज्य अमेरिका तथा लेटिन अमेरिका ने इस संधि-प्रस्ताव पर हस्ताक्षर किये थे। तब अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने कहा था---"दिस इज ए फॉरवर्ड स्टैप इन द् डायरैक्शन ऑफ कल्चरल एचीवमेन्ट्स ऑफ द् कन्ट्रीज ऑफ दिस हैमिस्फेयर।"

उन्होंने अमेरिकी सरकार के सहयोग से ही "मास्टर इंस्टीच्यूट ऑफ युनाइटेड आर्ट्स" तथा "इंटरनेशनल आर्ट सैण्टर" की स्थापना की जो कला तथा संस्कृति के संरक्षण तथा प्रसार के लिये महत्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। इसके अतिरिक्त अमेरिका में उनके सम्मान में २९ मंजिलों वाले एक विशाल भवन में "रोरिक म्यूजियम" बनाया गया जिसमें उनके चित्रों को संग्रहीत किया गया तथा जिसके अध्यक्ष पद पर स्वयं रोरिक को ही सुशोभित किया गया। इस संग्रहालय की कई शाखाएं यूरोप, अमेरिका, फार ईस्ट तथा रूस के कई स्थानों पर स्थापित की गयीं।

अमेरिका में वह विज्ञान और पुरातत्त्व के प्रोफेसर भी रहे। बाद में रूस तथा मध्य एशिया

में अनेक पुरातात्त्विक अन्वेषणों यथा भू-खनन सर्वेक्षणों में भी उन्होंने महत्वपूर्ण सहयोग दिया। उनकी इस बहुमुखी योग्यता तथा व्यक्तित्व से प्रभावित होकर कई देशों की अनेक उच्चस्तरीय विशिष्ट अकादमियों तथा संस्थाओं ने उनको अपनी फैलोशिप प्रदान कर सम्मानित किया। उनका लिखित साहित्य तीस खण्डों में है जो उनकी उर्वर कल्पना-शक्ति, विलक्षण चिन्तन तथा प्रज्ञा का द्योतक है।

उनके हृदय में सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता, आस्था तथा सम्मान था जो कि उनकी कलाकृतियों के भावपक्ष से स्पष्ट होता है जिसमें ईसाई, बौद्ध तथा हिन्दू धार्मिक प्रसंगों से विषयों का चयन किया गया था। सेन्ट सर्ग्यस, सैन्क्टा प्रोट्रैक्टिक्स, कॅनफ्लैग्रेशन, सेन्टरी घोस्ट्स, बुद्ध द् गिवर कमान्ड ऑफ रिग्डेन ज्येपो, श्री कृष्ण, कल्कि अवतार, शिव ओम तथा अन्य कला कृतियों के अवलोकन से ऐसा आभास होता है कि उन्होंने अलौकिक शक्ति को विविध रूप में व्यापक दृष्टि से देखा था। अपनी कला में जिस सौंदर्य को साकार किया, उसके माध्यम से ही उन्होंने "सत्-चित-आनन्द" को अनुभूत किया था। सत्य, सौंदर्य तथा मानव कल्याण की समन्वित आधार शिला पर उनकी कला का निर्माण हुआ था। वे साधक पहले थे तथा कलाकार बाद में। उनके चित्रों को देखकर ही एक महान रूसी लेखक गोर्की ने उनको "द् 'ग्रेटैस्ट ठन्ट्यूटिविस्ट" कहा था सन् १९२० में महाकवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने जब उनके चित्रों को देखा तो आन्दोलित हो उठे तथा लंदन से रोरिक को पत्र में लिखा था "... ... ... यौर पिक्चर्स प्रोफाउन्डली मूव्ड मी... ... ... दे मेड मी रीयलाइज वन थिंग व्हिच इज ऑब्वोयस एण्ड यट व्हिच वन नीड्स टु डिस्कवर फॉर वनसैल्फ ओवर एण्ड ओवर अगेन : इट इज दैट ट्रूथ इज इनफाइनाइट व्हेन आइ ट्रायड टु फाइन्ड वर्डस टु डैस्क्राइब टु माइसेल्फ व्हाट वर द् आइडियाज व्हिच यौर पिक्चर्स सजैस्टेड, आइ फेल्ट। इट वाज बिकौज द् लैंग्वेज ऑफ पिक्चर्स फाइंड्स इट्स डोमेन इन ट्रुथ व्हेयर वर्डस हैव नो एक्सेस ... ... व्हेन वन आर्ट कैन फुल्ली बी एक्सप्रैस्ड बॉय अनॉदर, इट इज ए फेल्यौर। यौर पिक्चर्स आर डिस्टिंक्ट एण्ड यट आर नॉट डिफाइनेबिल बाइ वर्डस। यौर आर्ट इज जेलस ऑफ इट्स इन्डपैंन्डैन्स बिकौज इट इज ग्रेट।"

हिमाचल प्रदेश की धरती, जो पहाड़ी चित्रकला सूर्यास्त के बाद श्रीहीन हो गई थी, एक बार पुनः इस महान प्रतिभा की तूलिका से गौरवांतित हो उठी। यद्यपि हिमाचल प्रदेश की पारम्परिक पहाड़ी चित्रकला से रोरिक का कोई सम्बन्ध नहीं था किंतु उसकी तूलिका ने जो कुछ भी प्रसूत किया उसमें हिमाचल प्रदेश का ही अधिकांश सहयोग था।

रोरिक को यदि आधुनिक भारतीय कला की महान उपलब्धि तथा रूस की देन कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। उनकी जन्मभूमि भले ही रूस में थी किन्तु कर्मभूमि अत्यन्त विस्तृत थी, वह सभी देशों के नागरिक तथा प्रत्येक व्यक्ति के बन्धु थे। उनका स्थान विश्व के उन विलक्षण प्रतिभावान व्यक्तियों में रहा है जिनको अपने व्यक्तित्व व कृतित्व के कारण अपने जीवन-काल में ही इतना भव्य अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त हुआ। उन्होंने अंतिम समय तक सृजन करते हुए सात हजार से भी अधिक कृतियाँ कला-संसार को दे डालीं। भारत भूमि के हिमाचल प्रदेश को ही इस बात का

श्रेय और गर्व है कि विश्व के अनेक स्थानों का भ्रमण करने के बाद भी इस महर्षि ने अपने जीवन के अंतिम दो दशक यहीं रहकर व्यतीत किये तथा अन्त में इसी भूमि के प्यार भरे आंचल में सदा के लिये सो गया। नग्गर में देवदारु तथा नीले चीड़ के वृक्षों से घिरी, इस महान प्रतिभा की समाधि पर उत्कीर्ण शिलालेख इस प्रकार अंकित है---"आन डिसेम्बर द् थर्टीन्थ १९४७ वाज़ क्रीमेटेड द् बॉडी ऑफ निकोलस रोरिक--द ग्रेट रशियन फ्रैंड ऑफ इंडिया।"

रोरिक की मृत्युपरान्त दिसम्बर १९४७ में ही तत्कालीन भारतीय प्रधानमंत्री स्व० पं० जवाहर लाल नेहरू ने नई दिल्ली में "रोरिक मेमोरियल एग्जीबीशन" का उद्घाटन करते हुए, देश के महान रूसी मित्र के प्रति श्रद्धांजली अर्पित करते हुए कहा था--- " ...... ए ग्रेट आर्टिस्ट, ए ग्रेट स्कॉलर एण्ड राइटर, आरकेयोलॉजिस्ट एण्ड एक्सप्लोरर, ही टच्ड एण्ड लाइटेड अप सो मैनी आसपैकट्स ऑफ ह्यूमन एण्डीवर। द् वैरी क्वान्टिटि इज़ स्टुपैन्डस--थाउजेंन्ड्स ऑफ पेंटिंग्स एण्ड ईच वन ऑफ दैम ए ग्रेट वर्क ऑफ आर्ट। व्हैन यू लुक एट दीज़ पेंटिंग्स .... दे रिमाइन्ड अस ऑफ समथिंग दैट परमानैंट एण्ड एटरनल अबाउट इंडिया, दैट वी कैननॉट हैल्प फीलिंग ए ग्रेट सैन्स ऑफ मैग्निफिसैन्ट कैनवासेज।"

रोरिक की कला हिमाचल प्रदेश की ही नहीं वरन् भारत देश की अमूल्य धरोहर है। जिसमें भारत तथा उसके रूसी मित्र के प्रणय का इतिहास, पाश्चात्य तथा प्राच्य, सूक्ष्म व स्थूल, असीमित व सीमित के एक्य अथा भारतीय सौंदर्य दर्शन "सत्यं शिवं सुन्दरम्" के भाव को साकार किया गया है। रोरिक का नाम साधक और कलाकार के रूप में सदैव याद किया जायेगा।

— कला विभाग, जे०वी० जैन पोस्ट ग्रेजुयेट कॉलिज,
प्रद्युम्न नगर, सहारनपुर (यू०पी०)

शिमला जनपद में नागपूजा परम्परा

—हरिराम जसटा

हिमाचल प्रदेश के अन्य भागों की तरह, शिमला जनपद में भी नाग की देवता के रूप में पूजा होती है। केवल मन्दिरों में स्थापित नाग को देवता के रूप में पूजा जाता है। अन्य सांपों को मारना उचित समझा जाता है। इसमें केवल एक अपवाद है और वह है, घर के अंदर सांप निकल आए, तो उसे इसलिये नहीं मारा जाता, क्योंकि उसे गृह-देवता या किसी पुण्य आत्मा का रूप समझा जाता है। इसी तरह मंदिर में किसी सांप को नहीं मारा जाता, क्योंकि लोक विश्वास में उसे देवता का रूप ही समझा जाता है।

शिमला जनपद में निम्नलिखित नाग प्रसिद्ध हैं। यह सूची पूरी नहीं है। कई जगह कई गांवों में एक ही नाग के मंदिर भी हैं।

	नाम	स्थान
१	कठोसी	बलसन, कोटखाई
२	बाल	बलसन, कोटखाई
३	नाली	जाहली चौपाल
४	कलुवा	
५	मामा	बपटा ,,
६	निगहू	थरोच ,,
७	महेशर	बुजाहरली रोहड़ू
८	मूल कलुवा	धार (कन्दास) मधान, चडारा, हिमरी, पुजारली, जदौन, क्यारी (मधान), टिक्का, रोहड़ू
९	नागदेव	खाबल, रोहड़ू
१०	तिलकू नाग	शैली (ढली)
११	नाग धानल	शांगरी
१२	गोली	कोटखाई
१३	नागदेव	किम रामपुर
१४	बोठा	— रामपुर
१५	चालदा	— रामपुर
१६	नवारू	नवारू
१७	गोशकवार	कवार रोहड़ू

	नाम	स्थान
१८	शरी	शरी रामपुर
१९	जंगलिका	जंगलिक रोहड़ू
२०	दिवदी	दिवदी ,,
२१	तांगनू	पेखा ,,
२२	पवासी	गवास, छपाड़ी, रोहड़ू
२३	बाबी	बाबी
२४	शंदरी	शांगरी कुमारसेन
२५	कोटेश्वर	मिहाना कुमारसेन
२६	वण्डा	वण्डा रामपुर
२७	जड़ू	कौबील
२८		खरया
२९	जड़ू	सरधारे
३०	खाचली	मेलन, जरोल, कुमारसैन
३१	घूंडा	घूंडा–कोटखाई
३२	चैथला	चैथला
३३	शरावन	शोशन, बड़ैयों
३४	घानल	शांगरी
३५	जड़ू नाग	देवरी, धार, खरग, तारापुर
३६	शाथला	शाथला कुमारसैन
३७	हिमतला	हिमतला (शाथला)
३८	महासू	चैड़ ठयोग
३९	माहू नाग	नालदेहरा कसुम्पटी
४०	पुजाली	पुजाली चौपाल
४१	मान्नेश्वर या मगनश्वर	मानन (शिलारू) कुमारसैन
४२	बशैरू (वंज दर्शक)	रामपुर
४३	भोजर	भोजर रामपुर
४४	शरमला	शरमला कोटखाई
४५	बोहल	बोहल कोटखाई
४६	महासू	कई गांवों में।

प्रत्येक नाग देवता की उत्पति, शक्ति पूजा विधि के बारे में सम्बन्धित ग्राम में मिथ, लोक-कथायें, लोक परम्परायें एवं विश्वास प्रचलित हैं। शिमला जनपद में नागों के मंदिरों की बनावट में छत सामने और पीछे की ओर से ढलवां होते हैं और बीच में उठता हुआ शिखर। इन मंदिरों की छतें प्रायः पत्थर की स्लेटों की बनी होती हैं। कहीं २ लकड़ी की बनी हैं। मंदिर एक मंजिला और

कई मंजिले हैं। दिवारें तराशे गए पत्थरों और लकड़ी से बनी हैं।

मंदिरों के द्वार, फर्श, स्तम्भ और दरवाजे बढ़िया लकड़ी के बने होते हैं। दरवाजों पर बढ़िया खुदाई का काम किया हुआ मिलता हैं। कई दरवाजों पर चांदी की परत मढ़ी हैं जिनमें देवी, देवता, शेरों और नागों के चित्र उत्कीर्ण किए गए हैं। इन में से अनेक देवताओं के रथ या पालकियां हैं और उनकी अन्य देवी- देवताओं की तरह पूजा होती है।

शिमला में रोहड़ू तहसील के टिकराल क्षेत्र में जो पब्बर नदी के स्त्रोत के समीप है पंचनागों का क्षेत्र माना जाता है। ये पंचनाग हैं---गोशकबार, जंगलिका, डेनडी, तगंमू पेखा और खावल। कहते हैं ये पंचनाग प्रथम हिमपात होते ही नागलोक (पाताल) चले जाते हैं और अपने श्रद्धालुओं के लिए सो जाते हैं और नाग उत्सव पर, जो मैदानों में होली के साथ होता है, ये नाग जाग जाते हैं। उस उत्सव पर पूर्णमाशी से कुछ दिन पहले स्थानीय लोग दो दलों में बंट जाते हैं एक देवता का दल दूसरा उसे जगाने वाला दल। उस दिन व्रत रख कर दोनों दलों में से जगाने वाला दल बर्फ के गोले बनाकर मंदिरों में बने सुराखों को २० कदम की दूरी से निशाना बनाते हैं और दूसरा दल जगाने वाले पर बर्फ के गोले फैंकता हैं। यदि मंदिर के कमरे में कोई बर्फ का गोला न फैंका जाए तो उन्हें जुर्माने में एक एक मेंढा देना पड़ता है। ऐसी दशा में एक साथ लोकवाद्य की ध्वनी से भी देवता जाग जाता है। जागने पर लोग खुशी से नाचते और गाते हैं। ज्योंही कोई गोला सुराख में चला जाता है, नाग देवता के मंदिरों के द्वार खोल दिए जाते हैं और उनकी पूजा आरम्भ हो जाती है। देवता का माली तब स्थानीय भविष्यवाणी अपने भक्तों के सामने करता है।

अधिक नाग देवता मंदिर से बाहर निकलना पसंद नहीं करते। कुछ नाग देवता स्थानीय देवता के अधीन समझे जाते हैं। कुछ नाग देवताओं की पूजा अन्य ग्राम देवताओं की तरह नहीं होती। केवल किसी सक्रांति, त्यौहार, नागपंचमी के दिन या किसी विशेष खुशी के अवसर पर पूजा होती है।

शिमला के क्षेत्र के प्रसिद्ध नागदेवताओं में नाग नाली, जाहली (चौपाल) महेशुर नाग, पुजाहरली (रोहड़ू) नाग खाबल, कलुबा नाग, गोली नाग, पंचनाग रोहड़ू, तंगनू नाग पेखा, गोली नाग, कोटेश्वर नाग, नाग घूंडा, महासू नाग, माहूनाग और बशैरू नाग के नाम गिने जा सकते हैं। इन सभी नाग देवताओं की सोने की मानवरूप की मूर्तियां बनी हैं जिन पर नागहुड उत्कीर्ण की गई हैं। इन सभी नागों के ऊंचे ऊंचे बढ़िया मंदिर हैं। दिन में दो बार पूजा भी होती है। इन नागों को उसी ग्राम में ही नहीं आस पास के अन्य गांवों में भी बड़ी श्रद्धा और विश्वास के साथ मान्यता प्राप्त है। इन नागों की परम्परा अनुसार चार बड़ी संक्राति, विशेष त्यौहारों, उत्सवों मेलों इत्यादि पर विशेष पूजा की जाती है।

कहते हैं नाग नाली, जाहली, (मून्दर परगना) का पुराना मंदिर पांच पांडवों ने बनाया था। परन्तु किसी स्थानीय झगड़े में गांवों और मंदिर को शत्रुओं ने जला डाला। उसी स्थान पर स्थानीय जनता ने नया मंदिर बनाया है। इस घटना का विवरण प्रचलित

लोकगीत में मिलता है। नागो रि दोई जाहली, पांजो पाडंबो री चाणी। यह चौपाल क्षेत्र के प्रसिद्ध एवं शक्तिशाली नागों में गिने जाते हैं।

किन्नौर के प्रसिद्ध मेशुरस (मोनशिरस) के अनेक भाई–बहनों में एक भाई शिमला जिला के पुजाहरली गांव में रहता है। यह गांव रोहड़ू तहसील में समरकोट के समीप है। परन्तु यह महेशुर नाग अपने आप को वाणासुर का नहीं शिवजी का ही रूप मानता है। इसके मुखड़ खुले हां रखे जाते हैं। इस का मंदिर पहाड़ी शैली का बना है। इसी प्रकार रोहड़ू के खाबल ग्राम में पहाड़ी शैली का अत्यन्त सुन्दर और ऊंचा मंदिर है। यहां पर दोनों समय खाबल नाग की पूजा होती है। खाबल नाग का अपना रथ है, लोकनाथ एवं लोकवादक हैं। दूर–दूर के गांव से लोग यहां भेंट चढ़ाने आते हैं। देवता खाबल की अधिक मान्यता के कारण, यह नाग समृद्ध नागों में से एक है।

मृत–आत्माएं किस प्रकार दूसरा जन्म लेकर नाग का रूप धारण कर लेती हैं, यह कलुवा नाग के प्रकट होने से ही स्पष्ट हो जाता है। किस प्रकार पुण्यात्मा साधू कालू, ब्राह्मण एक दिव्य घटना के फलस्वरुप मर कर शरैली (लम्बा सांप) बन गया और किस प्रकार सांप के रूप में यह पुण्यात्मा हिंसक बन कर चड़ारा माढा और कंडारू क्षेत्र में काल बन घूमता रहा। अन्त में केलटी गांव के चार शिलू भाईयों ने जब इसे मारा, तो उसके सिर से मूल नाग की दो प्रतिमाएं उपलब्ध हुई। ये प्रतिमाएं कोयले की तरह काली थीं। जिसमें नाग देव सिंहासन पर विश्राम कर रहे हैं और दो भगवतियां दोनों ओर बैठी एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए हैं। इन दो मूर्तियों को धार और जदौन ग्राम में स्थापित किया गया। इसी प्रकार इस नाग के लिए पुजाहरली, टिक्कर, क्यारी, भराना (मधान)। मधान के राणा को तथा कुल्लू के राजा जो टिक्कर में दुर्ग बनाना चाहते थे, इस नाग की शक्ति से प्रभावित हुए। कहते हैं कुल्लू के राजा ने एक मूर्ति और चांदी का नगाड़ा टिक्कर में नाग को भेंट किया। इस नाग के साथ अनेक मोर हैं, जिनमें शका, खोड़ू, शरबाल, गूंगी इत्यादि भी रहते हैं। प्रत्येक स्थान पर अब वे नाग अपने आप को स्वतन्त्र समझते हैं।

गोली नाग भी कभी कोटखाई के प्रसिद्ध और शक्तिशाली नागों में गिने जाते थे। गोली नाग कभी कुल्लू के एक क्षेत्र में राज्य करता था। परन्तु दुखी होकर लोगों ने उनकी पालकी और मूर्ति दरिया सतलुज में बहा दी। उन्हीं दिनों फराग ग्राम से एक व्यक्ति जो कुल्लू यात्रा पर गया था आगे चल कर दरिया के किनारे एक चमकती चीज नजर आयी, उसने जाकर सोने का अलंकार समझकर उठा ली। यात्रा में एक ग्राम में जहां यज्ञ हो रहा था, ठहरा और उनके उत्सव में शामिल हुआ। देवी को बली चढ़ाए जाने वाला बकरा जब काफी जल छिड़कने पर भी नहीं कांपा, ताकि लोग समझे कि देवी ने भेंट स्वीकार कर ली है, तो लोगों ने देवी के माली से पूछा, जिसके द्वारा देवी ने बताया कि उससे भी अधिक शक्तिशाली देव उस अजनबी के साथ आया है, जिसने अपना प्रभाव डाल दिया है। जब उसके लिए बलि चढ़ाई गई, तब जाकर देवी के लिए बलि चढ़ सकी।

वह व्यक्ति अपने घर जाकर नाग की पूजा करने लगा। उनके गांव में देवी की पूजा सर्वमान्य थी, इसलिए वह व्यक्ति छिपकर अपने नाग की पूजा करता रहा। जब देवी यात्रा पर थी, तो

इतने जोरों की वर्षा हुई कि देवी के पुजारी और उसकी पालकी सब बाढ़ में बह गए। वर्षा फिर भी होती रही। आखिर गांव वालों को जब मालूम हुआ, उन्होंने नाग को देवी की जगह, देवी मंदिर में स्थापित कर दिया। वर्षा थम गई। एक बार एक बड़े सांप ने दरिया का बहाव रोक दिया और कोटखाई के ठाकुर के महल तक डूबने की बारी आ गई। अब ठाकुर के कुल देवता के बस की बात न रही, तो उन्होंने गोली नाग से आपत्ति से बचाने की प्रार्थना की। तुरन्त एक आग का गोला आसमान से छूटा और सांप के टुकड़े-टुकड़े कर पानी का मार्ग खोल दिया और इस प्रकार ठाकुर के महल और राजधानी को बचाया।

कहते हैं एक बार कुल्लू के राजा ने कोटखाई पर आक्रमण कर दिया, तब राजा ने शक्तिशाली गोली नाग से विशेष पूजा कर रक्षा की प्रार्थना की। तुरन्त कुल्लू के राजा की छानबीन पर बादल गरजने लगे, बिजली ने जला कर सब कुछ ध्वस्त कर दिया। कुल्लू के सिपाही कुछ बिजली गिरने से और कुछ भागते हुए बाढ़ में बह गए। एक बार ठाकुर के किसी वंशज ने नाग के पुजारी को कैंदी बना दिया। इस पर नाग रुष्ट हो गए और कोटखाई के राणा को शाप दे दिया, कि शासन दूसरे राजा के हाथ चला जाएगा। कोटखाई १८८७ में अंग्रेजी प्रशासन के अधीन चला गया था।

प्रायः नागों का सम्बन्ध, वर्षा, बाढ़ जलस्त्रोतों इत्यादि से जोड़ा जाता है और इन्हें वर्षा का देवता माना जाता है। रोहड़ू में पंखा ग्राम के नाग का प्रादुर्भाव भी इसी प्रकार समझा जाता है। तगमूं नाग पंखा भी किन्नौर में स्थापित सपनी और ब्रउआ के नाग का भाई समझा जाता है। तगमूं नाग का जन्म भी ब्रउआ के समीप झील से हुआ समझा जाता है। इसी झील से प्राप्त सोने से तगमूं नाग की मूर्ति का निर्माण किया गया है। कहते हैं जिस गडरिये ने इन सोने की तीन मूर्तियां बनाकर अपने घर में रखी, उसे एक रात स्वप्न हुआ जिसमें तीन देवताओं ने कहा—आपने तीन देवताओं को अपने घर में बन्दी क्यों बना रखा है। यदि तुम अपनी सुरक्षा चाहते हो, तो एक मूर्ति रोहड़ू में पेखा गांव में स्थापित करो, जहां वह चसरालू देवता का रक्षक बना, दूसरी दो मूर्तियां किन्नौर में ब्रउआ और सपनी के स्थान पर ठीक रूप से पूजा करने के लिए ले जाओ। गडरिये ने ऐसा ही किया। तीनों जगहों पर पत्थर और लकड़ी के पहाड़ी शैली के ऊँचे-ऊँचे मन्दिरों में इन नागों की पूजा होती है।

वैसे तो कोटेश्वर की महादेव के रूप में पूजा होती है, परन्तु कुछ ग्रामों में नाग के रूप में भी पूजा जाता है। कहते हैं हाटकोटी में जो इसका जन्म स्थान समझा जाता है, जब जनता इसके अत्याचारों से दुखी हो गई, तो उसे तुम्बड़ी में बांध कर सतलुज में डालने की योजना कुछ ब्राह्मणों ने बनाई। परोई बील गाँव के समीप तुम्बड़ी में बांध कर ले जाने वाले ब्राह्मण का पांव एक शिला से टकरा कर फिसल गया। तुम्बड़ी टूट गई और कोटेश्वर ने उस से निकल कर भाग कर बान और भील की झाड़ियों में शरण ली। वह इस स्थान पर साँप के रूप में फिर लोगों को तंग करने लगा। कुमारसैन में बटाड़ा के ब्राह्मण ने उस साँप को यदि वह देवता है, सामने आने के लिए कहा, नहीं तो उसे जादू के जोर से जलाने की धमकी दी। कोटेश्वर देवता का रूप धारण कर जब ब्राह्मण के सामने खड़ा हो गया तो उसने देवता के सामने नतमस्तक हो कर उसे

अपने गांव में आ का निमन्त्रण दिया, जहां उसकी बारह वर्ष तक पूजा होती रही। कोटेश्वर ने उस ब्राह्मण को उस क्षेत्र का राजा बनाने का आशीर्वाद दिया, और स्वयं उस राज परिवार का कुल देवता बन गया। उसके लिए मथाना जुब्बड़, पिछला टिब्बा, कोटी, मंढोली और मिहाना में मंदिर बनाये, जहां उसे नाग के रूप में पूजा जाता है।

कहीं नागों का प्रकट होना दिव्य है, तो कहीं मानवी रूप में एक जनश्रुति अनुसार कोटखाई ग्राम पचरोटी की एक ब्राह्मण स्त्री ने एक नाग को जन्म दिया। भयभीत मां की पीड़ा को समझकर नाग ने मां को ऊपर की मंजिल में रहने का परामर्श दिया। जहां से एक छेद द्वारा मां नाग को दूध पिलाती रही। एक दिन नाग ने वहां से चले जाने का निश्चय मां को कह सुनाया और कहा कि जाते हुए उस पर हाथ फेर दे। ज्योंही मां ने ऐसा करना शुरू किया उसके शरीर से सोना झड़ने लगा। इस पर मां ने नाग की दुम पकड़ ली। नाग स्त्री को उड़ा कर ले गया और उसे मिहाना के पहाड़ में पटक दिया, जहां आज तक भूहरी देवी के नाम से काली बकरी की पूजा होती है। नाग पहाड़ की एक कन्दरा में रहने लगा। प्रतिदिन वहां कोठी ग्राम के गायों का दूध पीने लगा। गवाले ने देख लिया। गांव वालों को भी दिखाया। गांव के एक साधु ने उसे मारने की ठानी। सोए नाग के तो तीन टुकड़े कर दिए परन्तु स्वयं जलकर भस्म हो गया। इन तीन टुकड़ों में शीर्ष वाला भाग घूंडा में, बीच वाला भाग ममराड़ा और तीसरा पजउल की तरफ पहुंचा, जहां ग्रामिणों को नाग देवता की मुहरें मिलीं। इन तीन जगहों के अतिरिक्त नाग देवता के मंदिर चैथला, पुंगरिश, मोहल और शरमला में भी हैं।

ठयोग में महासूनाग की उत्पत्ति भी विचित्र परिस्थितियों में चैड़ चोटी पर हुई मानते हैं। कहते हैं एक बार एक बूढ़ा आदमी बर्फ से ढकी चोटी के समीप लकड़ियां इकट्ठी कर रहा था, कि उसे बरफ पर एक बड़ा नाग सरकते हुए नजर आया। भयभीत बूढ़े ने मन ही मन प्रार्थना की "यदि तुम देवता हो, तो अन्तर्ध्यान हो जाओ। यदि तुम डंक मारने वाले सांप हो तो मैं आत्म रक्षा में कुल्हाड़ा चला दूंगा।" आश्चर्य से उसने नाग को गायब पाया। कुछ दिनों बाद उसी जगह पर एक ग्वाले ने सफेद और काले नागको गाय का दूध पीते देखा। गांव वालों को जब मालूम हुआ, वे उस बूढ़े सहित वहां पहुंचे, देखकर बूढ़े ने कहा-" कि यह वही नाग है। देखते ही देखते नाग कहीं छिप गया। उसी जगह पर एक दिन एक औरत घास काटने लगी। परन्तु साफ आकाश में बिजली चमकी और वह बिजली उस पर गिरी और वह जलकर वहीं राख की ढेरी हो गई। वहीं पर गांव वालों को सोने की मूर्ति मिली, जिसे वहीं पर स्थापित कर दिया। वहां पर प्रतिवर्ष नागपंचमी के दिन महासू नाग की विशेष पूजा होती है। शिमला जनपद में महासू देवता का सम्बन्ध भी नाग से जोड़ा जाता है।

माहूनाग भी हिमाचल प्रदेश के प्रसिद्ध नागों में से एक है। माहूनाग का मंदिर शिमला से आगे नालदेहरा से लगभग एक मील की दूरी पर स्थित है। मंदिर आयताकार का बना है। इसकी चारों ओर दिवारें लकड़ी और तराशे गए पत्थरों की बनी हैं। छत लकड़ी और सलेटों से ढकी है। प्रवेश द्वार पर लकड़ी पर असाधारण खुदाई का काम किया गया है। द्वार के

दोनों ओर द्वारपाल बने हैं। दरवाजों पर नक्काशी की गई है और उस जगह भक्तों की भेंट स्वरूप चांदी के सिक्के जुड़े हुए हैं।

नाग देवता की स्थापना पहली मंजिल पर की गई है, जहां तक लकड़ी की दांतेदार सीढ़ी पर चढ़कर पहुंच सकते हैं। माहूनाग की मूर्ति एक छोटी सी मंजूषा में रखी है। कहते हैं, किसी ने माहूनाग की प्रतिमा को नहीं देखा, क्योंकि सभी को यह भय है कि जो देखेगा, अन्धा हो जाएगा।

कहते हैं माहूनाग सतलुज के पार रहते थे, भक्तों की बार-बार प्रार्थना पर वह नदी के इस ओर आ गये। उनके भक्तों पर स्थानीय आदिम जाति के लोग भारी जुल्म ढा रहे थे। कोगी के स्थान पर आकर नाग ने मोबियों को नष्ट कर दिया। बाढ़ों और तूफान ने एक भी घर नहीं रहने दिया। कहते हैं जहां आज गोल्फ खेलते हैं, वहीं कभी घना वन था और ग्वाले वहां पर गायें चराया करते थे। वहीं पर एक विशेष स्थान पर गाय के थनों से स्वयं दूध भूमि पर गिर जाता था। ग्वालों ने गांव वालों को यह बात बताई। सबने जब यह दृश्य देखा, तो वह जगह खोदने पर उन्हें अष्ट धातुओं का एक मुहरा मिला। इसे गांव वालों ने अपने गांव कोगी में मंदिर में स्थापित किया। विशेष उत्सव पर माहूनाग को गोल्फ मैदान में लाया जाता है। जहां प्रतिवर्ष मेला लगता है। ग्रामीण लोग यहां पर देवबाजा की सुर और लय पर नाचते और गाते हैं। लोकवाद्यों पर यह देवबाजा इतना सुन्दर बजता है, कि एक बार एक अंग्रेज लड़की जो मेला देखने आयी थी, स्वयं ही नाचने लगी और फिर नाचती ही रही। लोगों ने समझा उस पर माहूनाग आ गया है। माहूनाग से हाथ जोड़ कर प्रार्थना की तब कहीं उसे छुटकारा मिल सका।

माहूनाग को लोग मोनाल या नाग देव भी कहते हैं। जब यहां घने जंगल थे और सुन्दर पक्षी मोनाल अधिक संख्या में इस क्षेत्र में होते थे तब माहूनाग को मोनाल या नालदेव भी लोग कहते हैं। नालदेहरा का भावार्थ भी नालदेव का मंदिर ही है।

माहूनाग नृत्य पसन्द करते हैं। कहते हैं एक बार एक बाजगी अपनी ढोलकी सहित किसी समीप के गांव में विवाह उत्सव से वापिस आ रहा था। शाम के धुंधलके में जब वह जंगल से गुजर रहा था उसे एक सुन्दर मोनाल पक्षी नजर आया। वह गुलेल से उसका निशाना बनाना ही चाहता था, कि उस पक्षी ने वृहद आकार धारण कर लिया और बाजगी को कहा— "क्या तुमने मुझे पक्षी समझ लिया आओ हम नाचे, अपनी ढोलकी बजाओ।" लोगों का कहना है, नाग नाचते रहे, सारा संसार नाचने लगा। बाजगी भी नाचने लगा और नाचते नाचते बेहोश हो गया। खेत, वृक्ष, चट्टान और देवता का छत्र भी नृत्य में घूमता रहा। ऐसे हैं माहूनाग। अन्य से बिल्कुल अपनी निराली शान है। एक अन्य माहूनाग की पूजा मण्डी जिला की करसोग तहसील में भी होती है। नालदेहरा से यह स्थान अधिक दूर नहीं है।

माहूनाग की तरह बशैहरू नाग भी हिमाचल प्रदेश के प्रसिद्ध नागों में से एक है। शिमला जनपद में बशैहरू नाग की अनेक स्थानों पर पूजा होती है। कहते हैं कि एक स्त्री को घास काटते हुए एक बार त्रिमुखी सोने का मुहर मिला। उसे घर लाकर और भेड़-बकरी

और पशु धन की समृद्धि के लिए उसे गोशाला में रखा। परन्तु प्रातः वहां पानी ही पानी था। सारे पशु डूब चुके थे या बह चुके थे। उसने भयभीत होकर वह मुहरा एक ब्राह्मण को दिया। उसका घर भी पानी से भर गया। तब ब्राह्मण ने गांव वालों से कहकर गांव के बाहर एक मंदिर बनवाया और नाग की वहां स्थापना की। यहां से अब भी वह मौसम पर नियंत्रण रखता है। मन्दिर के समीप ही एक बड़ा चश्मा फूट पड़ा, वहां नाग ने झील बनवाई, जिसका पानी सिंचाई के लिये भी काम आता है। अभी भी नाग को विशेष अवसर पर यहां लाया जाता है। उसके कारदार ५-६ घण्टे बातचीत नहीं करते। इस समय में देवता के बजन्तरी बाजे बजाते रहते हैं। ताकि दैवी शक्ति का नाग में प्रवेश हो। यहां से ही यह नाग अन्य स्थानों पर गया।

सराहन के समीप कलै गाँव का देवता बण्डा नाग है जो इस क्षेत्र का प्रधान देवता समझा जाता है। कहते हैं, यह नाग अपने आठ भाइयों सहित सरपारा गांव के एक तालाब से उत्पन्न हुआ। कहा जाता है कि प्राचीन काल में जड़ देवता महादेव का पहरेदार था। वह इसी तालाब में रहता था। एक दिन इस तालाब में सुन्दर कमल खिले। इस गांव की एक स्त्री सुनूमाई ने एक दिन तालाब पर आकर ८ कमल तोड़ दिये नवां कमल आगे खिसकता रहा और वह उसे पकड़ने की होड़ में जल में डूब गई। वह छः मास वहां डूबी रही। सुनूवाई की प्रार्थना पर देवता ने उसे छोड़ दिया। वह वहां से निकल कर नागाजनी के स्थान पर बैठ गई, देखा तो ९ साँप उसके शरीर से चिपटे हुए थे। उसके शरीर से ९ स्थानों से दूध निकलने लगा। उसने एक पिटारे में रख कर उन्हें दूध पिलाती रही। गाय दुहते समय आधा दूध सांपों के लिए रख देती। दूध कम होने के कारण एक दिन सुनुमाई को सन्देह हुआ। खोज करने पर उसे पिटारा मिला, इसमें सांपों को देख कर डर गई। इस पर जल्दी से उसने लकड़ियां इकट्ठी कीं और पिटारा उस पर रख कर नीचे से आग लगा दी, परन्तु आग नहीं लगी। इस घटना के फलस्वरूप सभी नाग वहां से निकले। उन्हीं में से एक बण्डा नाग भी था। बण्डा गांव कलै गांव के समीप ही है। इन नागों के नौ गांव इस प्रकार हैं :-

१) बण्डा	२) कौबील	
३) खरगा	४) सरगा	दो नाग कहीं अज्ञात स्थान पर
५) सरपारे	६) माहुनाग	चले गये। कलै नाग का मन्दिर
७) खापली।		और रथ हैं।

इसी प्रकार खापली नाग के बारे में कहा जाता है कि गांव के कोलाहल से दूर सन्यासियों की तरह वनों में रहना पसन्द करता है। वह आज तक जड़ोल वन में तालाब के किनारे रहता है। एक बार एक माँ ने जिसकी चार बेटियां काना देव हड़प कर गया था, खाचली नाग से प्रार्थना की कि वह एक ही जीवित बची बच्ची की रक्षा करे। खाचली नाग ने विश्वास दिया कि जब काना देव के आदमी कन्या को बलि के लिये ले जाने को आयें तो उसे खाचली नाग से शरण मांगनी चाहिये और उसका मनन करे। स्त्री ने ऐसा ही किया। उसी समय साफ आसमान में काले बादल जड़ोल पर छा गए और मेलन गांव तक पहुंच गये। बिजली चमकने लगी, तूफान आने लगा और भारी वर्षा से मुटाना मेलन गांव और उसका देवता काना देव सब नष्ट हो गये।

आस-पास के गांव वाले खाचली नाग के पास आये और उसे अपना देवता बनाने की प्रार्थना की, परन्तु नाग ने प्रार्थना अस्वीकार कर दी, क्योंकि वह पवित्र आत्मा साधु आदतों के स्वामी थे। वह शान-ओ-शौकत से दूर रहना पसन्द करते थे। खाचली नाग देवता ने चतुर्मुख को मेलन का नया देवता बनाने का सुझाव उन्हें दिया। स्वयं आज तक एकाकी रहकर उसी रूप में स्थानीय जनता के श्रद्धा पात्र बने हुए हैं।

शिमला जनपद के झांजर गांव में पानी का अभाव दूर करने के लिए एक ब्राह्मण ने श्रीगुल की आराधना कर पानी की मांग की। श्रीगुल देव ने ब्राह्मण को एक तुम्बा दिया और उसे उस स्थान पर खोलने के लिये कहा, जहां वह पानी चाहता है। उत्सुकतावश उसने तुम्बा गांव के नीचे ही खोल दिया। तुम्बे में से नाग निकला और जिधर से वह गया, उधर से नहर चल पड़ी। इस प्रकार ज्यादातर नाग-कथाओं में नागों का सम्बन्ध पानी से जोड़ा जाता रहा है।

६०० वर्ष पूर्व तिलकू के स्थान पर एक नाग मन्दिर था, क्योंकि उस मन्दिर में तब तक कोई पूजा नहीं होती थी। इसलिये वहाँ खेतीबाड़ी करने वाले ग्राम वासियों को वह तंग करने लगा। जब उन्होंने उसे पूजना शुरु किया, उस से नाग प्रसन्न हो गया। लोगों ने उसकी मूर्ति शैला गांव के नव निर्मित मन्दिर में स्थापित कर दी। नाग की मूर्ति काली व चमकदार है और उसके साथ भगवती की भी पूजा होती है। नाग पंचमी के दिन यह नाग तिलकू के पुराने स्थान पर अवश्य जाता है। महीने में केवल एक बार संक्रांति के दिन इसकी धूप-दीप से पूजा होती है। बड़ोग के ब्राह्मण भी इसकी पूजा करते हैं। ग्राम देवता के साथ भी इसकी पूजा की जाती है। छबीसी परगना में धानल के स्थान पर एक और नाग की पूजा होती है। कहते हैं कि ५०० वर्ष पहले शांगरी राज्य के पट्टी जुबड़ के समीप नागो थान पर खेत में एक नाग प्रकट हुआ। धानल ग्राम का एक किसान नागोथाना में हल चला रहा था, वहाँ उसे एक काली प्रतिमा मिली, वह उसे घर ले गया। परन्तु घर में उस दिन से अप्रत्याशित घटनाएं होने लगीं। इस पर सब लोगों ने उसकी पूजा करनी शुरु कर दी। ग्राम देवता मालेंदी देव के साथ इसकी भी पूजा की जाती है।

अभी तक मैंने ऐसे नागों का उल्लेख किया जिनकी नित्य पूजा होती है, परन्तु शिमला क्षेत्र में ऐसे स्थान, मूर्तियां और मंदिर आज भी विद्यमान हैं, जिन्हें अब स्थानीय लोग या तो भूल गये हैं या अन्य शक्तिशाली देवी-देवता की पूजा के कारण उन्हें भुला दिया गया है। ऐसे स्थानों में कोटखाई में नागड़ू और गोजीनाग का मंदिर तथा रोहड़ू में नाग गुफा शोषण। पहले दो का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। यहां हम नाग गुफा शोषण का उल्लेख करेंगे। जुब्बल में हाटकोटी, आराकोट होकर कठंग (२० मील) पहुंचना पड़ता है। कठंग से त्यूंची (५ मील) सड़क छोड़कर लगभग ३ मील दक्षिण की ओर सघन वन में एक ऊंची पर्वत चोटी के मूल भाग में यह कला की दृष्टि से सुन्दर गुफा है। जिसे देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि कभी इधर नाग पूजा परम्परा का प्रभाव रहा होगा। गुफा का प्रवेश द्वार बहुत ही संकीर्ण हैं। इसलिए खड़े होकर इस गुफा में प्रवेश संभव नहीं। अतः दंडवत झुककर अन्दर जाना पड़ता है। गुफा के द्वार से ही एक वर्गाकार वाली गुफा की तरफ गया हुआ पाषाण का काफी मोटा नाग है जो द्वार से आरम्भ

होकर ४-५ गज आगे तक जाकर वह पत्थर का नाग गुफा की दिवार में चढ़ जाता है और गुफा की छत में उसके सहस्त्रों कण स्फटिक पत्थर के हो जाते हैं, जिनमें अब भी बहुत चमक है। गुफा द्वार से तंग परन्तु धीरे-२ अन्दर से चौड़ी होती है। गुफा के अन्तिम भाग में केवल २-३ व्यक्ति ही बैठ सकते हैं। गुफा का मध्य भाग अधिक चौड़ा है। भीतर प्रकाश का अभाव गुफा के अन्तिम भाग में दो मूर्तियां गुफा के पत्थर में उत्कीर्ण की गई हैं। शिवजी का शिवलिंग ही लगता है। शिवरात्री और श्रावण मास में ही लोग यहां आते हैं। समीप ही एक स्वच्छ नदी बहती है। अभी तक कला पारखियों एवं इतिहासकारों ने इस सुन्दर स्थल को नहीं खोजा, तभी इसका जिक्र किसी अनुसंधान पत्र में नहीं मिला। परन्तु एक बात स्पष्ट है, कि शिमला जनपद में नाग पूजा भी इतनी ही लोकप्रिय है, जितनी अन्य ग्राम देवी देवताओं की है।

कुमार भवन, संजौली, शिमला

फ़ारसी और संस्कृत अवसर्ग (एफ़िक्स) साम्य

—डॉ० लक्ष्मीशंकर गुप्त

फ़ारसी तथा संस्कृत शब्दार्थों में साम्य के विषय में अनेक लोग जानते हैं, पर उनके अवसर्गों में भी ध्वनि और अर्थ दोनों ही दृष्टियों से आश्चर्यजनक साम्य हैं। वस्तुतः फ़ारसी के पद संस्कृत के ही पदों से विकसित हुए हैं और उसके अवसर्ग भी संस्कृत अवसर्गों के स्वाभाविक विकास हैं। प्रस्तुत निबंध में इसी विषय का विवेचन किया जा रहा है नीचे की पंक्तियों में फ़ारसी के लिए 'फ़ा०' और संस्कृत के लिए 'सं०' संक्षिप्त रूप का व्यवहार किया गया है। अवसर्गों के विवरण से पूर्व यह सूचित कर देना आवश्यक है कि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के समान आधुनिक फ़ारसी का व्याकरण भी सरलीकरण की ओर अग्रसर हुआ है, परिणामतः उससे द्विवचन का लोप हो गया है और व्याकरणिक लिंग समाप्त हो गए हैं।

उपसर्ग

१ फ़ा० अ (निरर्थक)=सं० अ (नञ्)—फ़ा० बे, अबे (रहित, अभाव आदि अर्थों का उपसर्ग), वर, अबर (पर), बा, अबा (सह, सहित), सिकंदर, इसकंदर। सं० कूपार, अकूपार (समुद्र)।

२ फ़ा० ना (निषेधार्थक)=सं० अन् (नञ्)—फ़ा० नाबालिग़ नाउम्मेद, नामुराद, नाकाम आदि। सं० अनाकार, अनागत अनागार, अनातप आदि।

३ फ़ा० बे (अभावार्थक)—सं० वि—फ़ा० बेदर्द, बेकार, बेशर्म आदि। सं० विकल, वियोग, विषम आदि।

४ फ़ा० हम (सह, साथ आदि)=सं० सम्—फ़ा०—हमदर्द, हमजोली, हमउम्र (समवयस्क), हमख़ानः (एक घर में रहने वाले) आदि। सं० समानुभूति, समध्व, समवेत, समागति आदि।

मध्यसर्ग

५ फ़ा० आ (संयोजक)=सं० आ—फ़ा० सरासर, दमादम (निरन्तर) आदि। सं० कचाकचि, दण्डादण्डि, हस्ताहस्ति आदि। तुलनीय—हिंदी—खचाखच, धड़ाधड़।

प्रत्यय

बहुवचन प्रत्यय

६ फ़ा० आन= सं० आनि (जस्, शस)—फ़ा० मर्द (मर्त्य, मनुष्य)से मर्दान, अस्प

(अश्व) से अस्पान आदि । सं० फल से फलानि, वन से वनानि इत्यादि ।

७ फ़ा० हा=सं० आ:(जस्)—सं० पील (पीलु, हाथी) से पीलहा, अस्प से अस्पहा, गुल (फूल) से गुलहा, रूख (चेहरा) से रूखहा आदि । सं० पीलु से पीलव:, अश्व से अश्वा:, नाग से नागा, इत्यादि ।

लिंगबोधक प्रत्यय

८ फ़ा० नर (पुंबोधक प्रत्यय)=सं० नर (संस्कृत में इसका पुंप्रत्यय के रूप में व्यवहार नहीं होता, पर यह 'पुरुष' अर्थ का वाचक संस्कृत शब्द है) । फा० फील नर (हाथी), सग नर (कुत्ता । सं० श्वक-भेड़िया) आदि ।

९ फ़ा० मादः (स्त्रीलिंगबोधक प्रत्यय)=सं० माता (सं० में यह स्त्री प्रत्यय के अर्थ में व्यवहृत नहीं है, पर फ़ा० में मातृजाति के अर्थ में इस शब्द का व्यवहार है) । खूक मादा (शुकरी), शुतुर मादा (उंटनी), बुज मादा (बकरी), गुर्ग मादा (वृकी) आदि ।

ऊनार्थक प्रत्यय

१० फ़ा० क=सं० के (कन्)—फ़ा० अस्प से अस्पक (सं० अश्वक), तिफ़ल (बाल) से तिफ़लक (बालक), जुल (जलौका, जॉक) से जलूक आदि । सं० वटु से वटुक, माणव से माणवक इत्यादि । संस्कृत के ही समान फ़ारसी में भी यह स्नेह और अनादर के भी अर्थ में प्रयुक्त होता है । फ़ा० तिफ़ल के मन बीमार अस्त (मेरा प्यारा बेटा अस्वस्थ है), आन मर्दक शरीर कीस्त (वह दुष्ट आदमी कौन है ?) सं० हा हा पुत्रक, नाधीतं सुगतैः तासु रात्रिषु । तेन त्वं विदुषाँ मध्ये पङ्के गौरिव सीदसि (पंचतंत्र) । ध्यातव्य है कि यह प्रत्यय हिंदी और अंग्रेजी में भी हैं, हिंदी ठंड से ठंडक, अंग्रेज़ी बुल (bull) से बुलक (bullock), हिल (hill) से हिलक (hillock) आदि ।

११ फ़ा० रू=सं० रूपं (प्रकार, जाति, 'आकार-प्रकार अथवा रंग वाले' के अर्थ में) फ़ा० पिसर (लड़का, आत्मज) से पिसरू, दख़्तर (सं० दुहितर, लड़की) से दख़्तरू । सं० गोरूप हि० गोरू, सं० पक्षिरूप हि० पखेरू, सं० महेलारूप हि० मेहरारु आदि ।

कर्तृवाचक प्रत्यय

१२ फ़ा० आ=सं० आ (तृच्, तृन्)—फ़ा० सुनीदन (सुनना) से सुनवा(श्रोता), दानिश्तन (जानना) से दाना (ज्ञानी), गुफ़्तन (बोलना) से गोया (बोलने वाला) आदि । सं० श्रु से श्रोता, ज्ञा से ज्ञाता, वद् से वक्ता आदि ।

१३ फ़ा० आन=सं० अन (युच)—फ़ा० पुरसीदन (पूछना) से पुरसान (प्राश्निक), बरदन (ढोना) से बरान (सं० भारिन्) आदि । क्रुद्ध से क्रोधन (क्रोध करनेवाला), मराड़् (सजाना, सवाँरना आदि से मण्डन (सजाने वाला) आदि ।

१४ फ़ा० कार=सं० कार—फ़ा० खातमकार (हाथीदाँत का काम करने वाला)। संस्कृत उदाहरणों के लिए नीचे फा० प्रत्यय 'गार' देखिए।

१५ फ़ा० गर=सं० कर (कृ+ट)—फ़ा० जरगर (स्वर्णकार) जादूगर इत्यादि । सं० दिवाकर, भास्कर, दुःखकत, सुखकर आदि।

१६ फ़ा० गार=सं० कार (कृ०+अण)—फ़ा० खिदमतगार (सेवक), परवरदीगार (पालनकर्ता), मददगार, सितमगार (अन्यायकर्ता) इत्यादि। सं० कलाकार, ग्रंथकार, पुराणकार इत्यादि।

स्वामित्वबोधक प्रत्यय

१७ फ़ा० मंद=सं० वन्त (मतुप्)—फ़ा० खिर्दमंद (बुद्धिमान्), सूदमंद (लाभयुक्त) आदि। सं० गुणवन्त, धनवन्त। "तपसी धनवंत, दरिद्र गृही। कलिकौतुक तात, न जात कही'—रामचरितमानस, ७।१०१

१८ फ़ा० वर=सं० वल (वलच्)—फ़ा० नामवर, दादवर (न्याय करने वाला) आदि। सं० दन्तावल (बड़े दाँतोंवाला, हाथी), शिखावल (मयूर), कृषिवल (किसान) इत्यादि।

आधारसूचक प्रत्यय

१९ फ़ा० स्तान=सं० स्थान (सं० में यह प्रत्यय नहीं, स्वतंत्र शब्द है)—फ़ा० गुलिस्तान, खारिस्तान (कंटकस्थान), गोरिस्तान (क़ब्रगाह) आदि। सं० मूलस्थान, इत्यादि, राजथान।

२० फ़ा० दान=सं० आधान (संस्कृत में यह भी प्रत्यय नहीं है, स्वतंत्र सार्थक शब्द है) फ़ा० गुलदान (गुलदस्ता, सजाने का पात्र), नमकदान (लवणपात्र) आदि। सं० पक्वाधान।

संबंधसूचक प्रत्यय

२१ फ़ा० न=सं० एण्य—फ़ा० दर्ज (वस्त्र की फटन) से दर्जन (सूई), अंजुम (नज्म='तारा' का बहुवचन) से अंजुमन (सभा, गोष्ठी) आदि। सं० प्रावृष (वर्षाऋतु) से प्रावृषेण्य।

विशेषण प्रत्यय

२२ फ़ा० ई—सं० ईय (छ, छण)—फ़ा० आसमानी, मिसरी (मिस्र से संबंधित, रूसी, ईरानी। सं० पाणिनीय, भ्रात्रीय मालीय, स्वस्रीय इत्यादि।

२३ फ़ा० ई=सं० ईय (अनीयर्)—फ़ा० खोरदनी (खाद्य), दादनी (देय) आदि। सं० दानीय, पानीय, करणीय आदि।

२४ फ़ा० तर (उत्तरावस्था-सूचक प्रत्यय)=सं० तर (तरप्)—फ़ा० वेहतर, सुर्खतर (अधिक लाल,) बदतर आदि। सं० अरुणतर, गुरुतर, लघुतर आदि।

२५ फ़ा० दार=सं० धार (धृ+अण) - फ़ा० मालदार, दियानतदार (नीतियुक्त), नामदार आदि - सं० सूत्रधार, कर्णधार आदि।

२६ फ़ा० देस=सं० दृश (दृश्+कञ्)—फ़ा० माहदेस (चंद्रवत्), हूरदेस (परी–जैसी) आदि। सं० कीदृश, तादृश, मादृश (मेरे समान) आदि।

क्रमवाचक संख्याओं के प्रत्यय

२७ फ़ा० म=सं० म (अमच्, डट्मट्)—फ़ा० यकम (पहला), पंजम (पांचवाँ) हफ़्तम (सातवाँ), नहम (नवाँ), दहम (दसवाँ) आदि।

वर्तमानकालिक कृदंत के प्रत्यय

२८ फ़ा० अन= सं० अन् (शतृ)—फ़ा० नालान (रोता हुआ), दवान (दौड़ता हुआ) आदि। सं० रुदन्, धावन्, गच्छन्, कुर्वन् इत्यादि।

भूतकालिक कृदंत के प्रत्यय

२९ फ़ा० अन=सं० न्न (क्त)—फ़ा० बिरिस्तन (भूनना) से बिर्यान (भुना हुआ, भृष्ट)। सं० भिद् (तोड़ना, अलग करना) से 'भिन्न', छद (ढकना) से 'छन्न' आदि।

कालपुरुषवचनबोधक प्रत्यय

३० फ़ा० म (सामान्यभूत, उत्तमपुरुष, एकवचन का प्रत्यय)=सं० अम्। फ़ा० खुफ़्तम (मैं सोया), गुफ़्तम (मैंने कहा, ख्वान्दम (मैंने पढ़ा)। सं० अस्वप्म्, अवदम्, अपठम् इत्यादि।

अस्वीकृतिसूचक क्रियाएं

३१ फ़ा० न (अस्वीकृतिसूचक उपसर्ग)=सं० न (संस्कृत में इसकी गणना निपात के अंतर्गत है)। फ़ा० नगुफ़्तम (मैंने नहीं कहा), न आमद : बूद (वह नहीं आया था), किस नगोयद कि दूग़ मन तुर्श अस्त (कोई अपने दहीं को खट्टा नहीं कहता) आदि। सं० नावदम, नायातः, स शान्तिमाप्नोति न कामकामी (गीता २। ७०) ; 'श्वा यदि क्रियते राजा तत्किं नाश्नात्युपानहम्' आदि।

निवारिका क्रियाएँ

३२ फ़ा० म=सं० मा (संस्कृत में यह उपसर्ग नहीं निपात है)—फ़ा० मरो (मत जाओ), मख्वान (मतपढ़ो), 'मा रफ़ (मत जाओ) आदि। सं० मा निषाद, प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः' रामायण, 'क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ', गीता, २।३, 'मा देहि राम, जननीजठरे निवासम्' आदि।

संबंधसूचक अव्यय

३३ फ़ा० अंदर=सं० अंतर्। फ़ा० अंदर मकान। सं० अन्तरग्नि, अन्तर्दहि, अन्तर्यामिन्, अन्तर्वाणिज्य, अन्तर्वेद इत्यादि।

३४ फ़ा० दर (भीतर, नीचे)=सं० तल (सं० में यह अव्यय नहीं है)—फ़ा० दरपर्दः (पर्दे में), दरे मकान (घर के भीतर)। सं० तलांगुलि, तलेक्षण इत्यादि।

३५ फ़ा० बर (पर, ऊपर) = सं० उपरि — फ़ा० बर अस्प सवार सुदम (मैं घोड़े पर सवार था), 'बर मजारे मा गरीबां नै चिरागे नै गुले। नै परे परवानः सोजद नै सदाए बुलबुले'— जेबुन्निसा (हम गरीबों के मज़ार पर न चिराग़ जले, न फूल खिलें, जिससे न तो परवाना जल सके, न बुलबुल रोए)। सं० मुखस्योपरि वृष्टिः पपातः 'उपरि दलानां हिमकणिकानां कापि हृदयहर शोभा' इत्यादि।

सर्वनाम

३६ फ़ा० ईन (यह) = सं० एनम् (यह, इसको)।

३७ फ़ा० इनान (ये)—सं० एतान् (ये, इनको)

संबोधनसूचक अव्यय

३८ फ़ा० ई० (ऐ)—सं० अयि—फ़ा० ई दोस्त, सं० 'अयि भो महर्षिपुत्र' अभिज्ञानशाकुन्तलम्, ७।

विविध

३९ फ़ा० किताबत (तुम्हारी किताब) = सं० पुस्तकं तव।

४० फ़ा० किताबम (मेरी किताब)—सं० पुस्तकं मम।

४१ फ़ा० किताबश (उसकी किताब)—सं० पुस्तकमस्य।

४२ फ़ा० कीस्त (कौन है)—सं० कोऽस्ति।

४३ फ़ा० नेस्त (नहीं है)—सं० नास्ति।

४४ फ़ा० बिहतरम (अधिक अच्छा हूँ)— सं० श्रेष्ठतरोऽस्मि। 'बिहतरम' का 'अम' और अंग्रेजी का 'ऐम'। (हूँ। am) सं० अस्मि से ही व्युत्पन्न जान पड़ते हैं।

४५ फ़ा० 'बादशाह रा पिसर' (बादशाह का लड़का)—मारवाड़ी—बादशा रो छोरो, बादशा रा छोरा। फ़ा० का संबंध—प्रत्यय 'रा' मारवाड़ी के संबंधप्रत्यय सेतुलनीय है।

ऊपरलिखित तथ्यों से स्पष्ट है कि फ़ारसी के अनेकानेक पदों और अवसर्गों का मूल संस्कृत में विद्यमान है। वस्तुतः वे संस्कृत से व्युत्पन्न हुए हैं और कतिपय ध्वन्यात्मक प्रक्रियाओं के कारण—जिनका स्थानाभाव के कारण यहाँ विस्तार नहीं किया जा सकता—अपने मूलरूप से दूर पड़ गए हैं। विश्वास है कि विद्वज्जन ध्वन्यात्मक विकास की प्रक्रिया स्वयं सरलता से समझ लेंगे। यह प्रारंभिक अध्ययन केवल विद्वानों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए है और मुझे विश्वास है कि दोनों भाषाओं की गम्भीर तुलना से उनका संबंध और प्रगाढ सिद्ध होगा।

प्राध्यापक
काशी विद्यापीठ वाराणसी

बाबा कांशी राम : जीवन एवं साहित्य

—डॉ० गौतम शर्मा 'व्यथित'

जन्मस्थान ऐतिहासिकता :

बाबा कांशी राम डाडा सीबा के थे। उनका जन्म इसी स्थान पर ११ जुलाई १८८२ को हुआ था। गत वर्ष उनके जन्मदिवस पर हि. प्र. भाषा कला संस्कृति अकादमी ने दो दिवसीय समारोह आयोजित किया। अतः इस स्वतन्त्रता सेनानी, क्रान्तिकारी साहित्यकार की जन्मभूमि में जाने का अवसर मिला। डाडा सीबा अब एक कस्बानुमा है। ढलियारा से तलवाड़ा को सरकती कच्ची पक्की सड़क के मध्य यह स्थित है। चलता सा बस स्टैंड, कुछ नई पुरानी दुकाने, एक बैंक, डाक-तार घर अस्पताल तथा आमों के झुरमुट में जंगलाती रैस्ट हाऊस छोटा सा। पास ही एक हाई स्कूल जिसके गेट पर 'बाबा कांशी राम राजकीय हाई स्कूल' लिखा है। प्राय: यही गेट यहां आने वाले का स्वागत करता है और जाने वाले को विदा देता है।

स्कूल से कुछ दूरी पर पुरानी हवेलियों के भीतर राधा कृष्ण का पुराना मंदिर है। इसका निर्माण अठाहरवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ था। मंदिर के भीतर भित्ति चित्रों के अनेक नमूने हैं जो सीबा के राजा राम सिंह (१८४५–१८७५) की कला प्रियता एवं कला संरक्षण भावना के प्रतीक हैं। इतिहास बताता है कि सीबा रियासत गुलेर राज्य की ही शाखा है जिसकी स्थापना राजा शिवरन चन्द ने १४५० A.D. में की थी। उसने अपने नाम पर ही रियासत का नाम 'सीबा' रखा, जो कालांतर में उसी नाम से लोक प्रिय हुआ। तदनंतर यहां २५ राजाओं ने राज किया। मंदिर में हुई चित्रकला के विषय में Mr. J.C. French ने लिखा है :—

"I photographed some emious frescoes in a temple of the Raja of Siba's, one of the frescoes of the childhood of Krishna, has a fine design and the pose of the figure is powerful and impressive—the dream, the glamour, the magic of the art is gone and we face the hard, dull facts of drab and common place life."

मंदिर के थोड़ी दूर ढलवां पहाड़ी पर राजप्रसाद दिखाई देते हैं। इनका अधिकांश भाग भूकंप में खंडित हो चुका है। कुछ प्रयोग हीनता का शिकार बना है। इतिहास बताता है कि

सन् १८७३ में तत्कालीन राजा ने सीबा किला को छोड़कर यहां बसने का निश्चय कर ये भवन बनवाए थे। यहां भी रंग महलनुमा एक भवन है जिसमें भित्तिचित्र कला के उत्कृष्ट नमूने रहे होंगे, ऐसी टूटती-गिरती दिवारों की कहानी पढ़ने से संकेत मिलते हैं। कुछ कलाकृतियां अभी तक भी कलम की बारीकी, रंग प्रयोग कुशलता, कथानक आदि की दृष्टि से कला अन्वेषकों, संरक्षको की राह विसूरती हैं। सन् १९३१ में Mr. J.C. French यहां आए थे। उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिमलायन आर्ट' में लिखा है—

"The house was decorated with frescoes on the walls, which included of pictures of Raja holding a Darbar. It fell down in the earth quake of 1905 and the frescoes are too in ruinous condition."

सन् १६२२ में जहांगीर यहां से होता कांगड़ा गया था। उसकी बेगम नूरजहां तथा ससुर इत-माद-उद दाऊला मलून गांव में लगे कैंप में ठहरे थे। चिरकाल से अस्वस्थ चले आ रहे इतमाद-उद-दाऊला की मृत्यु यहीं हुई थी। इतिहास की करवटें सहता यहराज्य कस्बे में कब बदल गया, कोई ग्वाह नहीं। गोलाकार पत्थरीली खड्डों, अगल बगल में झुरमुट नुमा बन वाड़ियों से घिरा यह कस्बा इतना सजीव नहीं लगा। इसके आगे सरकती व्यास नदी अब पौंग बांध बनने से समुद्रनुमा फैल गई है। निश्चित ही इसके भीतर अतीत की कई स्मृतियां, ऐतिहासिक आख्यान तथा लोक-कहानियां छिपी पडी होंगी। इसकी जल लहरियों पर बिछती सूर्यास्त की रश्मियां एक अनुठा समा बांधती है। नौकाविहार का आनन्द वर्णनातीत है। इस क्षेत्र में राजू चेले की जादू-तंत्र संबंधी अनेक कहानियां प्रचलित हैं। पीरों-वीरों, सिद्धों आदि के 'थान' भी लोकमानसी चिन्तन के अध्ययन की गुंजाईश लिए हैं।

क्रान्तिकारी व्यक्तित्व :

बाबा जी प्राईमरी तक 'डाडा' में ही पढ़े। तत्पश्चात दुकान चलाई। कारोबार अच्छा था, परन्तु इनका क्रांतिकारी स्वभाव चैन नहीं देता। कुछ समय बाद अमृतसर चले गए। वहां जलियां-वाला बाग की घटना से इतने प्रभावित हुए कि स्वतन्त्रता संग्रामियों के संपर्क में आकर वहीं से दिल्ली रवाना हो गए। २३ दिसंबर १९१२ को रास बिहारी बोस द्वारा लार्ड हार्डिंग पर बंब फैंकने की घटना ने इनके जीवन के उद्देश्य कोपूर्णतया बदल दिया। वे घर लौटे। कारोबार छोड़कर गांव-गांव घूमते, जलसा जलूस करते अपनी भाषा ,पहाड़ी' में कविता द्वारा स्वन्त्रता चेतना जगाने लगे।

सन् १९२२ में इन्हें पहली बार जेल हुई। इसमें उन्हें पहले धर्मशाला और फिर गुरदासपुर रखा गया। वे जमानत पर छूटने के हक में नहीं होते। इसी मध्य लाला लाजपत राय से सम्पर्क बना। उनकी पहली रचना 'मेरा जीए बीतया, जीऐ दी तैयारियां च' इसी जेल में लिखी गई थी। इसके अतिरिक्त और भी अनन्य रचनायें यहां की।

दूसरी बार जब वे कोटला में एक विशाल जनसमूह को अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध भड़का रहे थे, बंदी बने। उन्होंने अंग्रेजी राज्य को 'डिगा हेठ घ्याड़ा' अर्थात ब्रिटिश राज्य का सूरज डूबने

वाला है, कहा था । छः मास तक इसका मुकद्दमा चला । अंग्रेजी वकील इस वाक्य की व्याख्या न कर सका । अतः बाबा जी बरी हो गए । भगत सिंह को फांसी की सजा होने पर इन्होंने यह व्रत लिया 'जब तक भारत स्वतंत्र नहीं होगा, मैं काले वस्त्र धारण करूंगा' । तभी से वे 'स्याहपोश जरनैल' बने ।

सन् १९३७ में ज़िला होशियारपुर में कांग्रेस की विशाल कान्फ्रेंस हुई । इसमें पंडित नेहरू जी भी उपस्थित थे । उसमें बाबा जी की संयोजना शक्ति एवं ओजपूर्ण भाषण से प्रभावित होकर नेहरू जी ने इन्हें संबोधित करते हुए कहा था 'यह छोटे कद का आदमी सचमुच पहाड़ी गांधी' ही है । तब से जनता में वे 'पहाड़ी गांधी' के नाम से लोकप्रिय हुए ।

सन् १९४२ में इन्हें अन्तिम जेल हुई । इस बार इन्हें बहुत बुरी तरह पीड़ित किया गया । वहीं वे रोगग्रस्त हुए । जेल से मुक्त कर घर भेज दिए । तीन मास निरन्तर रोग शैया पर रह कर अक्तूबर १५, सन् १९४३ को इस संसार से विदा हुए । इनके साथियों में श्रीमती सरला शर्मा, कामरेड परस राम, बुआ रामरखी, कामरेड वरयाम सिंह (दौलतपुर चौंक वाले), पंचम चन्द, लाला बंशी राम अग्रवाल (पालमपुर वाले) उल्लेखनीय हैं । लाला हरदयाल, सरदार अजीत सिंह, सूफी अंबा प्रसाद आदि क्रान्तिकारियों से संपर्क रहने के कारण इनकी क्रान्तिकारी भावनाऐं उत्तोत्तर विकसित हुई । इन्हें ग्यारह बार जेल हुई और कुल मिलाकर नौ वर्ष तक जेल भोगी । इनका स्वर मधुर था । इनकी संगीत माधुरी पर प्रभावित होकर ही सरोजनी नायडू ने इन्हें 'पहाड़ी बुल बुल' कहा था । वे हरवल्लभ के संगीत मेला में भी सादर आमन्त्रित होते ।

काव्य : एक दृष्टि

लेखक गोष्ठी में 'पहाड़ी गांधी' जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर सुनने का अवसर मिला । यहीं उनके पुत्र स्वाया राम वैद्य तथा पौत्र रविकांत से मिलने का अवसर मिला । उनके निकटस्थ सम्बन्धी मास्टर जगत राम तथा उनकी पुत्री स्वर्ण प्रेम से भी भेंट हुई । सभी से बाबा जी के विषय में सुनने का संयोग बना । उनके मूल स्थान पर गया । यह सब जानकर प्रसन्नता हुई कि वे इसी मिट्टी के थे । यहीं के थे । वे इस मिट्टी तथा धरती को अपना समझते थे । इसे स्वतन्त्र कराने हेतु वे जीवनपर्यन्त कष्ट झेलते अमर शहीद हुए । परंतु यह बात समझ नहीं आई कि इस स्वतंत्रता संग्रामी वीर पुत्र, अमर साहित्यकार के प्रति स्थानीय लोग आज इतने उदास क्यों ? जो व्यक्ति अपनी मिट्टी की लाज बचाने हेतु अपनी भाषा में देश प्रेम तथा सामाजिक विषमता के गीत गाता आज़ादी का ध्वज फहराता गांव-गांव घूमा, उसके प्रति उसके गाँव में उतनी श्रद्धा क्यों नहीं, उतने स्नेहमयी अपनत्व भरे भाव नहीं । वे उसे उतनी गरिमा से अपना नहीं रहे, आखिर क्यों ? यह संतोष जनक लगा कि किसी न किसी ढंग से स्थानीय राजकीय हाई स्कूल के साथ 'पहाड़ी गाँधी बाबा कांशी राम' जुड़ा है ।

रविकांत ने उनके काव्य के कुछ रूप दिखाये, जो देवनागरी लिपि में उतारे गए थे । बाबा जी पहाड़ी को उर्दू script में लिखा करते । स्वयाराम वैद्य जी के पास उनके रचित काव्य की मूल प्रतियां सुरक्षित है । उनकी डायरी से कुछ कवितायें वैद्य जी ने भी सुनाई । उनके शैशव,

यौवन तथा संघर्ष काल के कई वृत सुने, उस परिवेश से जुड़ने के पश्चात इनके विषय में पहले से पर्याप्त जानकारी बढ़ी। अब तक मैंने इनके कुछ ही कवितांश पढ़े तथा सुने थे। फलतः एक लोक कवि का बिम्ब उभरा था। परन्तु रविकांत एवं स्वायाराम वैद्य जी से भेंट करने पर उनके काव्य के जो रूप देखने को मिले, उससे इनकी 'पहाड़ी साहित्य की देन' के संबंध में बनी मेरी धारणा निश्चित ही बदली है। अतः सुधि पाठकों से संशोधन की अपेक्षा रखता हूँ। मुझे रविकांत से जो कुछ मिला, वह नए सिरे से लिखा गया है, परन्तु वह उस काल तथा परिवेश से इतना जुड़ा है कि 'गांधी जी' का ही मानना पड़ता है। यह भी सही है कि मूल काव्य जो उर्दू से हिन्दी (देवनागरी लिपि) में उतारा गया है उसमें कुछ छूटने और कुछ नया जुड़ने की संभावना भी रहती है। मुझे सर्वेक्षण में उनके काव्य के निम्नलिखित रूप उपलब्ध हो सके हैं :—

क मेरा जीण बीतया सारा—यह बावा जी की पहली रचना बताई गयी है।

ख पहाड़ : पहाड़ी—स्थानीन जीवन, परिवेश आदि से जुड़ी कविता।

ग अटक जेल—बंदी जीवन का चित्र

घ नाना जी दी कहानी ऐतिहासिक कहानियों की खण्ड काव्य
ङ कुनाले दी कहानी नुमा रचनायें।

च बाबा बालक नाथ

छ इक ग़रीब बाप की बच्चे से मुहब्बत और बेबसी की कहानी।

ज ओ भुंड कडणा मेरे ते।

झ निक्के-निक्के माहणुआं जो दुख बड़ा भारी।
ञ दुखे विच कोइ रहम नि हुंदा।

ट गुरदासपुर जेल में लिखी कवितायें : शीर्षकहीन
  १ कांशी राम सुण ऐह कैहदा
  २ दिले दे कंडे न सही, पैरां दे कंडे तां कडी दिया
  ३ मैं मने दे दुखे विच, अपणा विश्वास घट दिखया।
  ४ जाहलू मैं तुहांते जुदाई लैणी।
  ५ नजर घुमा दी (एक लम्बी कविता)।
  ६ दिया कजो डरा दे।

ठ अपने दुख की झोली मैं डालदा।

ड जाह्लू तू चलदी।

ढ जिन्दगी और मौत : इक कहानी (एक लम्बी कविता)।

ण समाज नि रोया।

त रस्सी दा बणी गया सप लोको (लोकगीत)।

थ चेतक की कहानी।

इसके अतिरिक्त भी उनकी काव्य रचनाओं के होने की संभावना बनी है। वैद्य स्वायाराम जी यदि उनके उपलब्ध साहित्य का पूर्ण विवरण प्रकाशित कर सकें तो बाबा कांशी राम जी के काव्य संसार अथवा 'पहाड़ी साहित्य को उन की देन' के संबंध में सही एवं वैज्ञानिक अध्ययन किया जा सके। मुझे उपरोक्त रचनाओं को पढ़ने का जितना अवसर मिल सका उसी के आधार पर मेरे मन में उनकी काव्यगत विशेषताओं का जो बिम्ब बना है उसका संक्षिप्त विवरण देना समीचीन होगा।

क जीवन में तप त्याग, बलिदान के प्रति चेतनशीलता :

जिस मार्ग पर देश के वीर सपूत बढ़े हैं, वही मार्ग उन्हें अभीष्ट रहा। यही भाव यूं व्यंजित हुए है :—

'मिञ्जो जाने जमाना साह आए न आए
न भरोसा जिंदगी दा,
ओही रस्ता जित्थू होर चली गै
ओह तां कमाई गै, असां वि कमाना'
स्वदेश प्रेम और स्वराज्य की भावना तो उनके
लहू की बूंद-बूंद में रची-पची थी :
कांशी राम सुन ऐह कैंहदा
जेहड़ा गुरदासपुर जेल रैंहदा
कागज खलारी डयोढ़ी विच बैंहदा
वायदा स्वराज भुली नि जाना

ख राष्ट्रीय प्रेम भावना

उनकी प्रत्येक रचना में राष्ट्रीय प्रेम की गाथा है परन्तु उनकी लम्बी कविता 'नजर घुमा दी' तो राष्ट्रीयता का शंख नाद करती है :

मैं कई बार जेल जाई आया
तां पैगाम सुनाया
जिन्दा लाज नि लानी
इक्को बार जमना आसां
बब्बे दी लाज रखनी
देस बड़ा ऐ, कौम बड़ी ऐ
कुलजा मत्था टेकी कने
इन्कलाब बोलना, ओ कांशी !
फिरी जेल जाणा, इत्यादि

उनके मन में किसी प्रकार की लोकप्रियता की भूख नहीं थी। उनके प्रत्येक कार्य में, शब्द-शब्द में निस्वार्थ भाव के दर्शन होते हैं। एक कवितांश उद्धृत है :

मिञ्जो मशहूरिया कोई विश्वास नी
मिञ्जो पता ऐ
काले दे समुद्रां जो
इन्नी लहरां दी मारा कने
टुकड़े-टुकड़े करी दिहगा
सचाईया, मौता ते कोई डर नी
इसा सचाईया जो मेरा दिल जाणदा
मिञ्जो मौत नी छुंहदी ।

प्रकृतिचित्रण

इनके काव्य में प्रकृति चित्रण से दो रूप उपलब्ध होते हैं क—परिवेश चित्रण तथा ख—मानवीकृत रूप । प्रकृति का मानवीकृत रूप बड़ी सहजता से हुआ है जो उनकी काव्य वाणी को और भी मोहक, सरस एवं सर्व ग्राह्य बना देता है । एक उदाहरण देखिये :—

जाहलू तू चलदी
साहमणे दे तारे, होर चमकी पौंदे
धरत गाना, गाना लगी पौंदी
साहमणे दी हवा, अप्पू विच
पुछ-गिछ करना लगदी, तां
अखड़ियां दा सारा नसा
पिंडे दे अंगा-अंगा उतारीं देंदी
फिरी सूरज पहाड़े दिया ढागा ते
डरदा-डरदा उपर आई जांदा ।

यहां कवि ने अभीष्ट को अनायासिक ढंग से रूपाचित करने में पूर्ण सफलता पाई है । सूर्योदय की प्राकृतिक सुषमा एवं उसके उदय की सहज प्रक्रिया गति बिम्ब से इतनी सहज बनी है कि समूचा दृश्य तैल चित्र सा आंखों के सामने तैरने लगता है । ऐसे ही उदाहरण 'कुनाले दी कहानी' खण्ड काव्य में भी दिखाई देते हैं । रचना के आरम्भ में नायिका का भाव चित्र कितना मनोहर है :-

'संझा दे डूबदे सूरजे, अम्बरे पर लाली छाई
लाल बदलां दियां टोलियां,
जफियां पाई कठियां होईयां,
तां न्हेरा होणे जो आया ।'

रूपचित्रण

बाबा कांसी राम जी का काव्य श्रृंगारी भावनाओं से अछूता नहीं । तप, त्याग, बलिदान

एवं राष्ट्र प्रेम के गीतों के साथ उन्होंने मानव जीवन की सहस भावनाओं को भी काव्य का विषय बनाया है। अधोलिखित कवितांश में रूपचित्रण की बारीकी देखिये :-

निक्की जां, निक्का कद
लम्बी नकड़ी, खुल्हा मत्था
गोरा गोरा मुखड़ा, गोल-गोल अक्खां
चिट्टे डोडे पर काला दाग़, घड़ियो ठोडी
न्हसैं तां चिट्टे दंदां दी, बड़ो छैल 'बीड़ी
कद छोटा, भार कुछ नी, चुक्की कुछड़े दिक्खा।

एक अन्य कविता में कवि ने नायिका की मांग का चित्रण कितने अनूठे बिम्ब द्वारा किया है, जरा देखिये :-

'चौड़ी चौखटा दा दरवाजा था
हरिया-भरिया बेला साही
लचकदी-लचकादी तग्गर महकदे
फुल्लां साही सौ-सौ बल खाई
इक सरूए साही
चौखटा ने टेक लाई खलोती थी
खड़ोती क्या थी, लचका दी थी
घणेयां बालां दे बिच
उचली सिद्धी मांग,
जिआ कालियां घटां बिच
उड़दे बगलेयां दी कतार'

यहां काली घटाओं में उड़ती बगुलों की कतार से काले बालों के बीच चमकती मांग का रूप, पूर्ण एवं प्रभावी बिम्ब लिए है। इसी कविता के अंत में एक विचित्र भाव का निरूपण यूं मिलता है :-

प्यारे दी लकड़ी सुकी गई
सुक्की लकड़ी सुकी गई
या मुकी गए, पता नी क्या होया
तू मौका पाई, जफ्फी पाई
मेरा मूंहडा गिल्ला होई गिया
तू दौड़ी गई।

निर्धनता, शोषण, राजतंत्र का विरोध

कवि तत्कालीन सामाजिक यथार्थ के प्रति पूर्ण रूप से जागरूक रहा है। उनकी अनेक

रचनाओं में ग़रीबी, सामाजिक शोषण तथा राजतंत्र की ज्यादतियों का वर्णन मिलता है। इन के विरोध में उनका स्वर निर्भीक एवं स्थिर रहा है। एक कवितांश प्रस्तुत है :-

माँ भुक्खी ऐ, बक्चा भुक्खा ऐ
तां दुध कुथू ?
बच्चा रोंहगा तां, माँ मता भारी दुध दिंहगी
दुध नी आए ममुऐं
बच्चा रोणा लग्गा
माँ उसकी पुचकारना लग्गी
अपणे मुहें कने उदा मुंह लगाई
बच्चे जाणया ऐह ममू ऐ
उसकी चूंहगणा लगेया
ओहत्थू दुध कुत्थी
बच्चा रोणा लग्गा, माँ रोणा लग्गी
पर समाज नी रोया।'

कवि ने जैसा देखा, जैसा भोगा वैसा ही लिख दिया। अभिव्यक्ति में किसी प्रकार की बनावट नहीं। सरलता, सहजता भरा कथन जहां अनूभूति में तीव्र रहा, वहां प्रतीति एवं प्रभाव में भी उतना ही सार्थक एवं समर्थ। कवि की हर विषय में सपाट ब्यानी उसका उल्लेखनीय वक्तव्य बन गया है। उपरोक्त कवितांश में भूखी मां और भूखे बच्चे की विवशता का बिम्ब इस समूची धरती के एक वर्ग विशेष के जीवन की कहानी कह गया है। कविता में प्रयुक्त शब्द चित्र समूचे भावचित्र को साकार करते हैं।

कवि का यथार्थ उसका निजी है जो सब का बन गया है। उसे दोहरा जीवन जीने वालों से घृणा है। वह सामाजिक विषमता के प्रति ललकारता है, फटकारता है :—

रोड़िया चली–चली पैर दुखी गै
छाले पई गै कंडे चुभी गै
पैरां ता खु मै —–
राहियां जो गलांदा
मियो दिले दे कंडे न सही
पर पैरां दे तां कढी दिया।

कवि को अपने कर्म एवं चिन्तन पर सदैव विश्वास रहा। वह किसी भी परिस्थिति में लड़खड़ाया नहीं। वह अपने विश्वास डिगा नहीं। यही भाव एक कवितांश में :-

मैं मने दे दुखे विच,
अपना विश्वास फट दिखेया,
घरोंदे चढ़दे, फरोंदे डुब्बदे वेले
विश्वासे दे भांडेयां जो
विश्वासे कने मारया

आंचलिकता

कवि अपनी मिट्टी तथा परिवेश से पूर्णतया जुड़ा रहा है। उसने जैसा देखा, वैसा ही लिखा। इनकी रचनाओं में भोगा हुआ यथार्थ मिलता है। कांगड़ा घाटी के ग्राम्य जीवन का एक सजीव चित्र एक रचना में इस प्रकार मिलता है :–

निक्का देआ पिंड था
वो निक्के-निक्के टपरू थे
खड़ उन्हां पर पिया था,
कचियां, टुटियां पगडंडियां
उन्हां टपरूआं दी लाज बचाणे जो
चारों पासे रूक्खां रा बण था।

इसमें कोई शक नहीं कि इस पद्यांश को पढ़ते ही पहाड़ के किसी भी गांव की भौगोलिक स्थिति, वहां की लोक जीवन पद्धति आदि सब कुछ साकार हो उठता है। परन्तु इन गावों के वीर सपूतों में अपने देश पर न्यौछावर होने की कितनी उत्कट भावना है इसके प्रति भी कवि चेतनशील रहा है यथा :-

'इस पिंडे रे कितड़े दीये
आजादी री शम्मा पर जली गै
चलदियां फिर दियां लाशां
संदूरे री मिटियां जवानियां।'

कवि का आंचलिक बिम्ब एवं भाषा प्रयोग सर्वत्र सार्थक एवं सर्व ग्राह्य सिद्ध हुआ है। 'निक्के-निक्के माहणुआं जो दुख बड़ा भारी' कविता उनके जीवन का दपर्ण है। इसमें तत्कालीन सामाजिक स्थितियों, राजतंत्र आदि पर बड़ा ही तीव्र व्यंग्य है यथार्थ के साथ देखिये :-

'निक्के-निक्के माहणुआं जो दुख बड़ा भारी
मिलदी नी रोटी किञ्या होणा गुजारा
खाली पेट टब्बरे दा निंद नि औंदी
कदी सराहणे सौंदे कदी सौंदे पौंदी
पैसा नि पल्ले मेरे चले नी चारा।

कवि ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भाग लिया था। १९११ में उनका संपर्क दिल्ली के क्रान्तिकारियों से बना।। गोरे सिपाहियों के अत्याचारों ने उनके भीतर के क्रान्तिकारी पुरुष को जगाया। महात्मा गांधी के सत्यग्रह में भाग लेने पर उनकी जेल यात्रा का क्रम आरम्भ हुआ। वे ग्यारह बार जेल गए और वहीं अपने साहित्य का सृजन किया। उन्होंने पराधीनता में पीड़ित जनता का जो चित्र प्रस्तुत किया है वह वास्तविकता के बहुत करीब है। यथा :-

'कपड़ा न तन नू मिलदा, नंगे बित गई उमर मेरी,
जुत्ता न पैर ने पाया, कुब्बी हो गई उमर मेरी

रजके नि खाहदी रोटी, भुख ने मारा
सरकार डराये सानू, हाकम वि खाए सानू
जैलदार, नंबरदार होर चौकीदार
मालिया न पूरा होन्दा, होर-होर बधाई जांदा।'

निष्कर्ष :

उपरोक्त संक्षिप्त विवेचना से यह सहज प्रतीत होता है कि बाबा कांशी राम का काव्य स्वदेश प्रेम भावना, निस्वार्थ कर्म, सत्यनिष्ठ भावना, प्रकृति चित्रण, सामाजिक विषमता, लोकाचार आदि विशेषताओं से युक्त है। भाषा का सहज तथा लौकिक बिम्बों का अनायासिक प्रयोग इनके काव्य की प्रतीति एवं ग्राहयता के विशेष गुण हैं। कविताओं में प्रयुक्त शब्द चित्र समूचे भावचित्र को, अभीष्ट बिम्ब को जीवन की संपूर्णता के साथ साकार कर देते हैं।

'नाना जी दी कहानी' तथा 'कुनाले दी कहानी' इनकी दो खण्ड काव्य रचनायें हैं। दोनों के संदर्भ ऐतिहासिक हैं। परन्तु कवि ने अपनी सर्जनाशक्ति से पहाड़ी भाषा में बड़े स्वाभाविक ढंग से कथ्य को पूर्ण रूपेण जीवन्त बनाए रखने का प्रयास किया है। इन में बिम्ब 'प्रतीक' उपमा, रुपक आदि के सहज-सुन्दर प्रयोग हुए हैं। भाषा प्रयोग सर्वत्र प्रभाव लिए है जिसमें किसी प्रकार की साहित्यक जबरदस्ती नहीं मिलती। कवि ने जैसा सोचा वैसा ही लिख दिया है। पहाड़ी गांधी का 'आदि कवि' मानना कहां तक समीचीन है यह प्रश्न सर्वेक्षण एवं अनुसंधान की अपेक्षतायें रखता है।

राजमंदिर नेरटी
कांगड़ा–१७६२०८

लोक नृत्य---तिल चौली

प्रेम कुमार शर्मा

तिल चौली केवल स्त्रियों का सामूहिक नृत्य है क्योंकि इस में तिल और चावलों का विशेष महत्व रहता है इस लिए इस नृत्य का नाम ही तिल चौली पड़ा हुआ है। तिल और चावलों को मिला कर तथा उसमें कुछ अंश तक मीठा मिलाकर जहां स्वास्थ्य के लिए उपयोगी है वहां भारतीय विचारधारा और पद्धति के अनुसार किसी भी धार्मिक कृत्य एवं संस्कार पर धूप दीप के साथ-साथ इनका होना पूजन, तर्पण के लिए परमोपयोगी समझा जाता है। अभिमन्त्रित तिल, चावलों के प्रक्षेपण से हमारे सुदूर पूर्व के पूर्वज अस्त्र-शस्त्र जैसे कार्य तक भी कर लिया करते थे। जीवन प्रदान, अग्नि प्रज्वलन, प्रशमन सभी कुछ तो इन के डालने से सम्पन्न हो जाता था। सम्भवतः ऐसे ही कारणों से वैवाहिक संस्कार के शुभ अवसर पर इनका महत्व आंकते हुए होने वाले इस नृत्य का नाम ही तदगत रखा गया। होता यह है कि नाचने से बहुत पहले तिल चावल साफ करके भिगो दिए जाते हैं और समय आने पर मीठा मिला कर किसी खारे या कांसा अथवा चांदी के थाल में डाल कर उसे सिर पर रख दुल्हे की माँ, न होने पर चाची या ताई स्त्री वृन्द में पहुंच कर नाचना आरम्भ करती है। इसी सुभारम्भ से समूह नृत्य शुरू हो जाता है।

अब थोड़ा लोक और नृत्य शब्द पर लिख देना भी अनुपयुक्त नहीं होगा। साधारणतया लोक शब्द लोग शब्द का ही पर्याय वाचक है, किन्तु यहां लोक शब्द अपने ही वृत का सूचक है। किसी भू-भाग विशेष के लोगों का ही द्योतक माना जाता है। क्योंकि लोक शब्द की अपनी सीमा और क्षेत्र हुआ करता है। इसकी अपनी मान्यताएं, रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज, परम्पराएं और धारणाएं हुआ करती हैं। यह इसलिए कि किसी भी बड़े देश की भौगोलिक स्थिति विभिन्नता में विभक्त जो रहती है। हमारा देश भारत भी महान देश है। इसकी भी भौगोलिक स्थिति अनेक तरह की है। कहीं उष्ण कहीं समशीतोष्ण इधर शीत तो उधर समशीत। कहीं सुविधा कहीं दुविधा। सुगम, दुर्गम अनेक तरह की विभिन्नता पाई जाती हैं। जिसके फलस्वरूप हमारे रहन-सहन, खान-पान रीति-रिवाज आदि पर विभिन्नता का रंग चढ़ा हुआ है। वातावरण की विविधता स्वभाविक विवशता में घेर कर देश वासियों पर अनेक तरह के पुट चढ़ाकर सामने रख देती है। इस प्रकार स्थान भेद के वृत में रहने वाले लोगों का ही परिचायक होता है, लोक शब्द।

किन्तु इस का अभिप्राय यह नहीं कि हम देशवासी एक नहीं हैं, क्योंकि हम एक ऐसे सूत्र में भी पिरोये हुए हैं जिसका नाम है सांस्कृतिक सूत्र। यदि उस पर तरह-२ के रंग चढ़े हुए हैं भी तो, यह साधारण बात सूत्र को सूत्र कहने से रोक नहीं सकती। केवल लाल, पीला, हरा विशेषण ही तो जोड़ा जा सकता है, रहेगा तो सूत्र ही। इसलिए पहले हम भारतीय हैं तदनन्तर

कुछ और। यदि हम सब ईश्वर परायण हैं, सबका लक्ष्य बिन्दु एक है तब वहां तक पहुचने के मार्ग अनेक हो सकते परन्तु हम सांस्कृतिक एकता के सूत्र से अलग कभी हो नहीं सकते।

इसी आधार और विचार के वृत में विचरता हुआ मैं हिमाचल में वर्तमान जिला चम्बा के एक लोक नृत्य 'तिल चौली' पर लिखने का दुःसाहस कर रहा हूँ। दुःसाहस इसलिए कि मैं स्वंय नर्तक नहीं हूँ।

"नृत्य"

जहाँ तक मैं समझता हूँ दिल की आनन्दानुभूति जब उमंगित हो कर शरीरांगों में थिरकने लगती है तब उस थिरकन, शरीर प्रचालन और अंग विक्षेपण को नृत्य कहा जाता है। अंगों की स्थिति और विक्षेप द्वारा ही भाव विभाव व्यक्त करके रसास्वादन किया तथा कराया जाता है। जिसकी सुस्पष्ट अभिव्यक्ति देखने से ही सम्भव हो, उस नृत्य को शब्दों द्वारा व्यक्त करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। अतः सुलझान के विचार को छोड़ वास्तविक विषय अपनाना ही समुचित समझता हूँ।

यदि नृत्य की पृष्ट भूमिका पर विचार किया जाए तब हमारी पहुंच पिछे की ओर दूर से दूर वैदिक काल तक ही हो पाती है। उसके पिछे की बात केवल अनुमान के सहारे रह जाती है। ऋग्वेद में जब हम 'नृत्यमानो अमृत' (ऋक् १०-१८-३) पढ़ लेते हैं तब कह सकते हैं यह काल नृत्य का आरम्भिक काल नहीं हो सकता, विकसित अवश्य हो सकता है। क्योंकि तब तक व्याकरण आदि का न केवल जन्म अपितु पूर्ण विकास भी हो चुका था। नृत्य का तो मानव से जन्म जात सम्बन्ध है। जब नितान्त अबोध शिशु को हाथ पाँव नचाकर प्रसन्नता अनुभव करते हम देखते हैं तब मानना पड़ता है कि जब मानव का जन्म हुआ होगा तभी नृत्य की भी साथ-साथ उत्पति हो गई होगी। जो प्रकृति नदी, नाले, झरनों को गीत और नृत्य प्रदान कर सकती है, उससे मानव ही कैसे रह सफता है। वैदिक काल में तो संगीत (नृत्य, गीत, वाद्य) विकसित रूप में आ चुका था। इसलिए नृत्य का आरम्भिक काल वैदिक काल मानना संगत नहीं लगता। अतएव नृत्य और मानव का जन्म जात सम्बन्ध मानना अधिक उपयुक्त लगता है।

इन बातों से इतना तो अवश्य सिद्ध हो जाता में कि जब मानव प्रकृतिक रूप में था उसका नृत्य भी प्राकृतिक रूप में ही रहा, जब सभ्यता के युग में पहुंचा तब नृत्य भी सुसंस्कृत रूप में आ गया सुसंस्कृत रूप जिसे आज शास्त्रीय नृत्य कहा जाता है। इसका जनक प्राकृतिक रूप ही माना जाता है। भेद केवल स्वभाविकता और कृत्रिमता का रहता है। वह इसलिए कि कुछ ने स्वभाविकता को अपनाए रखा कुछ इने गिनों ने कृत्रिमता को महत्त्व देते हुए स्वीकार लिया। यही कारण है कि मुख्य रूपेण नृत्य दो भागों में विभक्त हो गया। प्राकृतिक (स्वभाविक) और शास्त्रीय। स्वभाविक नृत्य में शास्त्रीय नृत्य की तरह नियमों का गोरख धन्धा नही होता। भाव प्रकटन की की स्वतः सिद्धि होती है। कोई किसी को सिखाता नहीं। ताल-मेल रिदम आदि सब स्वतः एवं दास बनकर आज्ञानुसारी हो जाया करते हैं। इस प्रकार के नृत्य को ही लोक नृत्य कहा जाता है। एक नियम समूह का दास; दूसरे के नियम समूह दास। एक परतन्त्रता में पनपता है, दूसरा स्वतन्त्रता में।

तिलचौली स्वतन्त्र नृत्य है। इसका मुख्य सम्बन्ध विवाह संस्कार से जुड़ा होने के कारण इसे सांस्कारिक नृत्य भी कहा जा सकता है। जब बारात दूल्हे को लेकर वधू गृह को चली जाती है तब पीछे वर गृह में रही स्त्रियां तिल चौली नृत्य किया करती हैं। पूर्वोक्त तिल चावलों का पात्र सिर पर रख दूल्हे की मां से ही नृत्यारम्भ हुआ करता है। जैसे ही मां नारी बृन्द में तिल चावल के पात्र धरे पहुंचती है नृत्य के लिए गीत, वाद्य की भी आवश्यकता रहती है न। इसलिए स्त्री समूह के साथ मां गाना आरम्भ करती हुई नाच उठती है। गीत के बोल हैं :—

मेरी तिल चौली, नची कुड़े,
नचदी नचदीः भुली कुड़े ?

मेरी तिल चौली, डुली कुड़े,
डुलदी डुलदी, डुली कुड़े ?

लाड़े दी अम्मा, नची कुड़े,
नचदी नचदी, भुली कुड़े ?

मेरी तिल चौली, डुली कुड़े,
डुलदी डुलदी, डुली कुड़े ?

लाडे दी चाची, नची कुड़े,
नचदी नचदी भुली कुड़े ?

मेरी तिल चौली, डुली कुड़े,
डुलदी डुलदी, डुली कुड़े ?

लाड़े दी ताई नची कुड़े,
नचदी नचदी भुली कुड़े ?

मेरी तिल चौली, डुली कुड़े,
उपहास में—

लाड़े दी भाभो नची कुड़े,
सबके मुसेरा कने भुली कुड़े ?

मेरी तिल चौली डुली कुड़े,
डुलदी डुलदी, डुली कुड़े ?

(कुड़े—हे बाले, डुली—गिर पड़ी, डुलदी—गिरती हुई, मुसेरा—मसेरा भाई)

प्रायः यह नृत्य उस स्थान पर हुआ करता है जहां दूल्हे को सजाया, संवारा जाता है। सब स्त्रियां इकट्ठी तो होती ही हैं। जैसे ही बारात चल पड़ती है सब स्त्रियाँ इस सामूहिक नृत्य के फिए उद्यत हो जाती हैं। पुरुष वर्ग उस स्थान से स्वयं चला जाता है या धकेल दिया जाता है।

ऐसा इसलिए कि बहुत बार नृत्य मण्डली में ऐसे उपहास किए जाते हैं जो पुरुष की वर्तमानता में लज्जास्पद हुआ करते हैं। कभी–कभी तो आनन्दातिरेक में ऐसे अश्लील स्वांग रचे जाते हैं जो सगे सम्बन्धी और भाई, बेटे तथा चाचा, ताए के समक्ष लज्जा की सीमा को भी लज्जित करने वाले हुआ करते हैं। पुरुष वर्जित इस नृत्य की मुद्रा एक जैसी नहीं रहती क्योंकि कई लोक गीतों की लय पर इसे नाचा जाता है फिर भी इस नृत्य का मुख्य लोक गीत उपरोक्त होने से नर्तिकाएं एक फराटी इस ओर पूरी करके इस ओर का बाजू सीधे नीचे छोड़, दूसरे बाजू को कोहनी से वक्ष स्थल की ओर उठाए इस ओर नाचने वाली को ऐसी ही मुद्रा से तान पूरा करती है। पुनः दूसरी ओर की फराटी देकर पहले मोड़ी भुजा सीधी रखकर पहले वाली सीधी भुजा को पहले की तरह मोड़ देकर उस ओर को नर्तिका से तान पूर्ति की जाती है।

ताक झांक कर देखा गया यह नृत्य इतनी स्वभाविकता व्यक्त कर रहा था कि मैं यह कहने से नहीं रुक सका—धन्य हैं इस प्रकार स्वभाविकता के तथ्य को सुरक्षित रखने वाली ये नारियां।

मुहल्ला चौंतड़ा
जिला चम्बा (हि० प्र०)

तीर्थ स्थल मार्कण्डे और व्यास गुफा

रामलाल पाठक

प्राचीन काल से ही हिमाचल प्रदेश देवी देवताओं का स्थल रहा है जिसके उदाहरण आज भी स्थान स्थान पर मिलते हैं। ऐसा कोई गांव नहीं जहां पर देवताओं के मन्दिर तथा सिद्ध वीरों की स्थापना न हो। लोग सबसे पहले ग्राम देवता व स्थान देवता की पूजा करते हैं चाहे किसी भी प्रकार का कार्य आरम्भ करना हो। विशेष उत्सवों पर इन देवी देवताओं को रोट और प्रसाद भी चढ़ाया जाता है। इन लोगों का इन देवताओं के प्रति श्रद्धा और विश्वास होता है। कुछेक स्थान किसी ऐतिहासिक अथवा धार्मिक घटना से सम्बन्धित होते हैं। जहां पर किसी सिद्ध महात्मा अथवा तपस्वी ने अपनी तपस्या से उस स्थान को पवित्र किया होता है। आज भी हजारों श्रद्धालु इन देव स्थानों के दर्शन और पवित्र पानी का स्पर्श करने से अपने आप को धन्य मानते हैं।

मार्कण्डे भी इन तीर्थों में से एक महत्वपूर्ण तीर्थस्थल है इस तीर्थ स्थल का पुराणों में भी वर्णन मिलता है। ये स्थल जिला बिलासपुर स्थित धार बन्दला के आँचल में स्थित है। बिलासपुर से शिमला की ओर जाते हुए ब्रह्मपुखर स्थान है। जहां से एक सड़क जुखाला और मार्कण्डे से होती हुई घाघस में मिली है। जिससे इस स्थल तक आने की पर्याप्त सुविधा है। इस स्थान पर बारह महीने पानी के झरने बहते रहते हैं जिससे साल भर यहां हरियाली ही हरियाली रहती है। क्योंकि मार्कण्डे की पावन धारा इस हरियाली को सींचती रहती है।

युगों पहले इस स्थान पर एक ब्राह्मण रहता था। जिसका नाम मृकण्ड था। काफी समय तक उसको पुत्र प्राप्ति नहीं हुई तो उसने तपस्या की। अतः उसकी तपस्या से प्रसन्न हो ब्रह्मा जी ने उनको पुत्र प्राप्ति का वरदान दिया। मृकण्डू ने विद्वान ज्योतिषियों को बुलाया और उसका लग्न और भाग्य देखने को कहा। ज्योतिषियों ने बताया कि यह बालक या तो जीवित ही नहीं रहेगा परन्तु किसी प्रकार बच गया तो ये अमर हो जाएगा। परन्तु ज्योंहि वह बढ़ने लगा मृकण्डू ब्राह्मण उदास रहने लगे। जब बालक मार्कण्डे को पता चला कि उनकी उम्र केवल पांच साल है तो वह मौत को जीतने का कोई उपाय सोचने लगा तथा वहीं तपस्या के लिए बैठ गया।

तपस्या करते करते बहुत दिन बीत गए। एक दिन उस की तपस्या से महाराज इन्द्र का सिंहासन न जीत ले। अतः उसने दौण नामक एक मन्त्री को भेजा कि तुम जाकर देखो कि मृत्यु लोक में ऐसा कौन तपस्वी पैदा हो गया है। दौण पता करके वापिस इन्द्र पुरी जा पहुंचा और महाराज को बताया कि मार्कण्डे नामक बालक तपस्या कर रहा है। तब इन्द्रराज ने दौण से कहा कि तुम मोहदीन्दी और रोहदन्दी दोनों परियों को ले जाओ और उसकी तपस्या भंग करो।

दौण दोनों परियों को लेकर आया तो मार्कण्डे तपस्या में लीन थे। परियों को देखते ही उसने उनको जल का छींटा दिया और वह वहीं पत्थर हो गई जबकि दौण भागता जा रहा था। मार्कण्डे ने उसे भी छींटा दिया जिससे वह जहां भी पहुंचा था वहीं पत्थर बन गया। इस तरह इन्द्रराज ने उनकी तपस्या भंग करने के लिए कई ढोंग रचाए परन्तु उन्हे सफलता नहीं मिली।

एक दिन वह भी आ गया जब यम राज भैंसे पर सवार होकर मृत्यु का सन्देश लेकर आ गया। उस समय मार्कंडे शिवलिंग की पूजा कर रहे थे। यम को देखकर घबरा गए और शिवलिंग की बाहों को पकड़ लिया। उसी समय भगवान शिव ने मार्कण्डे को सदा अमर रहे का वरदान दिया। उसी समय वहां से पानी के झरने फूट पड़े। तब से लेकर वह झरने आज तक बह रहे हैं।

मार्कण्डे के पास ही एक व्यास गुफा है जो वहां से पुराने बिलासपुर शहर में सांडू के मैदान तक निकलती है। इस गुफा से व्यास ऋषि मार्कण्डे नहाने जाया करते थे। इसमें पहले साधु रहते थे जिनके पास गऊएं भी थी। एक दिन गऊएं चरती-चरती दावीं की तरफ निकल गई और एक किसान के खतों में चरने लगीं। किसान को गुस्सा आया और यह उन गऊओं को लेकर गुफा में प्रवेश हो गया। उसने उन साधुओं को बताया कि मेरे खेत से इन गऊओं ने गन्दम और जौ चुन लिए हैं अतः कृपया इन गऊओं को बान्ध कर रखा करें। साधु ने उसके लिए कुछ जौ के दाने दिए। उस किसान ने गुफा से बाहर ही दाने फैंक दिए और घर की तरफ चला गया। कुछ आगे जाकर उसने देखा कि कुछ जौ के दाने जो उसके कपड़ों पर पड़े थे सोना बन गए हैं। वह फिर गुफा की तरफ वापिस हो गया परन्तु तब तक गुफा बन्द हो गई थी। तब से इस गुफा में बृज शीला अड़ गई है।

इसलिए इस स्थान पर बैसाखी की पहली रात को मेला होता है। सुबह तीन-चार बजे लोग स्नान करते हैं। दो दिन तक ये मेला चलता है। विशेष उत्सव और पूर्णिमा या ग्रहण के दिन भी लोग यहां स्नान करते हैं।

गांव चिड़की, डा० जुखाला
तै० सदर, जिला बिलासपुर (हि० प्र०)

बापू के सत्य के प्रयोग

सन्त राम वत्स्य

'प्रयोग' आपका परिचित शब्द है। विज्ञान के छात्र प्रयोगशाला में तरह तरह के प्रयोग करके देखते हैं कि शास्त्र में जो सिद्धान्त है, वह प्रयोग द्वारा पूरा उतरता है या नहीं। सच तो यह है कि प्रयोग द्वारा जो सिद्धान्त प्रमाणित न हो, वह सिद्धान्त नहीं होता।

राष्ट्रपिता गान्धी जी ने अपनी आत्मकथा को 'सत्य का प्रयोग' कहा है। उन्होंने प्रस्तावना में लिखा है : मुझे तो आत्मकथा के बहाने सत्य के जो अनेक प्रयोग मैंने किये हैं, उनकी कथा लिखनी है। "आगे वे लिखते हैं ....इसीलिए मैंने इन प्रयत्नों को 'सत्य के प्रयोग' जैसा पहला नाम दिया है।

'सत्य शब्द भी हमारा परिचित है। 'सत्यमेव जयते' हमारे राष्ट्र का आदर्श वाक्य है। गांधी जी ने तो कहा था, "सत्य ही ईश्वर है।" गाँधी जी के जीवन में 'सत्य' और 'अहिंसा' ये दो मूल आधार थे। पर इन दोनों में भी वे 'सत्य' को ही महत्वपूर्ण मानते थे। उन्होंने कहा था, "सत्य और अहिंसा के बीच चुनाव करना पड़े तो मैं अहिंसा को छोड़कर 'सत्य' रखने में आगा-पिछा नहीं करूंगा। सत्य के प्रति उनका जो आग्रह था, वही 'सत्यग्रह' के रूप में प्रकट हुआ था।

बचपन से ही 'सत्य, से उन्हें प्रेम था। उन्होंने बचपन की एक चोरी के बारे में यों लिखा है : "चोरी के समय मेरी उमर पन्द्रह साल रही होगी। यह चोरी मेरे मांसाहारी भाई के सोने के कड़े के टुकड़े की थी। उन पर मामूली सा, लगभग पच्चीस रुपए का कर्ज हो गया था। उसकी आदायगी के बारे में हम दोनों भाई सोच रहे थे। मेरे भाई के हाथ में सोने का ठोस कड़ा था। उसमें से एक तोला सोना काट लेना मुश्किल न था।

कड़ा कटा। कर्ज अदा हुआ। पर मेरे लिए यह बात असह्य हो गई। मैंने निश्चय किया कि आगे कभी चोरी करूंगा ही नहीं। मुझे लगा कि पिता जी के सम्मुख अपना दोष भी स्वीकार कर लेना चाहिए। पर जीभ न खुली। पिताजी स्वयं मुझे पिटेंगे, इसका तो डर था नहीं। मुझे याद नहीं पड़ता कि उन्होंने कभी हम में से किसी भाई को पीटा हो। पर खुद दुखी होंगे, शायद सिर फोड़ लें। मैंने सोचा कि यह जोखिम उठाकर भी दोष कबूल कर ही लेना चाहिए। उसके बिना शुद्धि नहीं होगी।

आखिर मैंने तय किया कि चिट्ठी लिख कर दोष स्वीकार किया जाए और क्षमा मांग ली जाए। मैंने चिट्ठी लिखकर हाथों हाथ दे दी। चिट्ठी में सारा दोष स्वीकार किया और सजा

चाही। आग्रह पूर्वक विनती की कि वे अपने को दुःख में न डालें, और भविष्य में फिर ऐसा अपराध न करने की प्रतिज्ञा की। ······

उन्होंने चिट्ठी पढ़ी। आँखों से मोती की बूंदें टपकीं। चिट्ठी भीग गई। उन्होंने क्षण भर के लिए आंखें मूंदी, चिट्ठी फाड़ डाली और फिर लेट गए। 'मैं भी रोया। पिताजी का दुःख समझ सका।' ·········

जो मनुष्य अधिकारी के सम्मुख स्वेच्छा से और निष्कपट भाव से अपना अपराध स्वीकार कर लेता है और फिर कभी वैसा अपराध न करने की प्रतिज्ञा करता है, वह शुद्धतम प्रायश्चित करता है।

०—०—०

दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी वकालत करते थे। वे झूठे मुकदमों में वकील बनने से इन्कार कर देते थे। एक प्रसंग देखिये : 'ऐसा करते हुए एक प्रसंग इस प्रकार का आया कि जब चलते मुकदमें के दौरान मैंने देखा कि मेरे मुवक्किल ने मुझे ठग लिया है। उसका मुकदमा झूठा था। वह कटहरे में खड़ा इस तरह कांप रहा था, मानो अभी गिर पड़ेगा। अतएव मैंने मैजिस्ट्रेट को मुवक्किल के विरुद्ध फैसला देने को कहा और मैं बैठ गया। प्रतिपक्षी का वकील आश्चर्य चकित हो गया। मैजिस्ट्रेट खुश हुआ।

०—०—०

एक दूसरा प्रसंग देखिए :

पारसी रुस्तम जी एक ही समय में मेरे मुवक्किल और सार्वजनिक कामों के साथी बने। ·········

इस साथी पर एक बार बड़ी विपत्ति आ पड़ी। अपने व्यापार की भी बहुत सी बातें वे मुझ से किया करते थे। लेकिन एक बात उन्होंने मुझसे छिपा रखी थी। पारसी रुस्तम जी चुंगी की चोरी किया करते थे। वे बम्बई कलकत्ते से जो माल मंगाते थे, उसी के सिलसिले में यह चोरी चलती थी। सब अधिकारियों से उनका अच्छा मेलजोल था, इस कारण उन पर कोई शक करता ही न था·········

पारसी रुस्तम जी की चोरी पकड़ी गई। वे दौड़े–२ मेरे पास आए। आंखों से आंसू बह रहे थे, और कह रहे थे 'भाई, मैंने आपसे कपट किया है। मेरा पाप आज प्रकट हो गया है। मैंने चुंगी की चोरी की है। अब मेरे भाग्य में तो जेल ही हो सकती है। मैं बरबाद होने वाला हूँ। इस आफत से आप ही मुझे बचा सकते हैं ·········

मैंने धीरज देकर कहा, 'मेरी रीति से तो आप परिचित ही हैं। छुड़ाना न छुड़ाना खुदा क हाथ है। अपराध स्वीकार करके छुड़ाया जा सके तो मैं छुड़ा सकता हूँ।'

इन भले पारसी का चेहरा उतर गया। रुस्तम जी से बोले, 'लेकिन आपके सामने मेरा अपराध स्वीकार कर लेना क्या पर्याप्त नहीं है ?'

मैंने धीरे से जवाब दिया, 'आपने अपराध तो सरकार का किया है। और स्वीकार मेरे सामने करते हैं। इससे क्या होता है ?'

मैंने इस मामले में विनय की अपनी सारी शक्ति लगा दी। मैं अधिकारी से मिला और सारी चोरी की बात उससे निर्भयतापूर्वक कह दी !

रुस्तम जी पर मुकदमा नहीं चला। उनके द्वारा कबूल की गई चुंगी की चोरी के दूने रुपए लेकर मुकदमा उठा देने का हुक्म जारी हुआ।'

o—o—o

गांधी जी सत्य को ही परमेश्वर मानते थे। उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि वह राजनीति में क्यों आए ? वह लिखते हैं : 'ऐसे व्यापक सत्य-नारायण के प्रत्यक्ष दर्शन के लिए जीव मात्र के प्रति आत्मवाद प्रेम की परम आवश्यकता है। और जो मनुष्य ऐसा करना चाहता है, वह जीवन के किसी भी क्षेत्र से बाहर नहीं रह सकता। यही कारण है कि सत्य की मेरी पूजा मुझे राजनीति में खींच लाई है। जो मनुष्य यह कहता है कि धर्म का राजनीति के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, वह धर्म को नहीं जानता, ऐसा कहने में मुझे संकोच नहीं होता, और न ऐसा कहने में अविनय करता हूँ।'

उन्होंने मन वाणी और कर्म शुद्धि पर जोर देते हुए इसे आसान काम तो नहीं बताया है पर सलाह दी है कि लगातार प्रयत्न करते रहना चाहिए और हार नहीं माननी चाहिए।

बापू समदर्शी थे। सबको समान दृष्टि से देखते-समझते थे। वे लिखते हैं : 'मेरे जीवन में ऐसी घटनाएं घटती ही रही हैं, जिनके कारण में अनेक धर्मावलम्बियों के और अनेक जातियों के गाढ़ परिचय में आ सका हूँ। इन सब के अनुभवों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मैंने अपने और पराये, देशी और विदेशी, गोरे और काले, हिंदू और मुसलमान अथवा ईसाई, पारसी या यहूदी के बीच कोई भेद नहीं किया।'

छात्रों के लिए उन्होंने जो बहुत सी बातें लिखी हैं, उनमें से हम एक को यहाँ उद्धृत कर रहे हैं :

,व्यायाम के बदले मैंने टहलने का सिलसिला रखा, इसलिए शरीर को व्यायाम न देने की गलती के लिए तो शायद मुझे सजा भोगना नहीं पड़ी, पर दूसरी एक गलती की सजा मैं आज तक भोग रहा हूँ। मैं नहीं जानता कि पढ़ाई में सुन्दर लेखन आवश्यक नहीं है, यह गलत ख्याल मुझे कैसे हो गया था। पर विलायत जाने तक यह बना रहा। बाद में और खास कर दक्षिण अफ्रीका में, जब मैंने वकीलों तथा दक्षिण अफ्रीका में जन्मे और पढ़े-लिखे नवयुवकों के मोती के दानों जैसे अक्षर देखे, तो मैं शरमाया और पछताया। मैंने अनुभव किया कि खराब अक्षर अधूरी शिक्षा की

निशानी मानी जानी चाहिए। बाद में मैंने अक्षर सुधारने का प्रयत्न किया, पर पके घड़े पर कहीं गला जुड़ता है। जवानी में मैंने जिसकी उपेक्षा की, उसे मैं आज तक नहीं कर सका। हर एक नवयुवक और नवयुवती मेरे उदाहरण से सबक ले और समझे कि अच्छे अक्षर विद्या का आवश्यक अंग है।'

०—०—०

ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में गांधी जी ने अपना अनुभव यों लिखा है :

ब्रह्मचर्य का पालन करना हो तो स्वादेन्द्रिय पर प्रभुत्व प्राप्त करना ही चाहिए। मैंने स्वयं अनुभव किया है कि यदि स्वाद को जीत लिया जाए, तो ब्रह्मचर्य का पालन बहुत सरल हो जाता है। इस कारण अबसे आगे के मेरे आहार सम्बन्धी प्रयोग केवल अन्नाहार की दृष्टि से नहीं, बल्कि ब्रह्मचर्य की दृष्टि से होने लगे। मैंने प्रयोग करके अनुभव किया कि आहार थोड़ा, सादा, और बिना मिर्च–मसाले का प्राकृतिक स्थिति वाला होना चाहिए।

'सत्य' को उन्होंने बार-बार कसौटी पर कसा था खरा पाया था। तभी वह कह सके थे :

सत्य एक विशाल वृक्ष है। ज्यों-ज्यों उसकी सेवा की जाती है त्यों-त्यों उसमें से अनेक फल पैदा होते दिखाई पड़ते हैं उनका अन्त ही नहीं होता। हम जैसे-२ उसकी गहराई में उतरते हैं, वैसे-२ उसमें से अधिक रत्न मिलते जाते हैं, सेवा के अवसर प्राप्त होते रहते हैं।

अपनी आत्मकथा को समाप्त करते हुए उन्होंने लिखा है :

'सत्य को मैंने जिस रूप में देखा, जिस मार्ग से देखा है, उसे उसी तरह प्रकट करने का मैंने सतत प्रयत्न किया है। क्योंकि मैंने आशा यह रखी है कि इससे पाठकों में सत्य और अहिंसा के प्रति अधिक आस्था उत्पन्न होगी।

के-४७, नवीनशाहदरा
दिल्ली-३२

भाई चाल

शंकर लाल शर्मा

छोटे-छोटे गांवों में हिमाचल प्रदेश बसा हुआ है। पहाड़ियों के आंचल में नन्हे २ खेतों में दिन रात कठिन परिश्रम से यहां के किसान रोटी पैदा करने में व्यस्त रहते हैं। खेतीबाड़ी यहां के लोगों का पुश्तैनी पेशा है। यह काम बड़ा कठिन और समयवद्ध है। आज यदि कोई काम छूट जाता है तो उसे साल बाद ही फिर करने का अवसर आएगा। दूसरे दिन करने के चक्कर में अगली श्रृंखला टूट जाने से सारा गड़बड़ हो जाता है। इसके लिए एक कहावत है "चंऊ बिखा रा भुल्या सारा ध्याड़ा रिंडो।" चार कदम भूलने पर सारा दिन भटकने पर भी राह मिल जाय तो गनीमत समझो।

भौगोलिक परिस्थितियों ने यहां के जन जीवन को बड़ा तोड़ा मरोड़ा है। असम भूमि और दुरूह जलवायु बहुत कुछ कर गुजरने की चाह को बर्फ की चादर से ढक देता है। यहां के लोग बड़े धीरज से प्रकृति से टक्कर लेते हैं। शायद तभी पहाड़ी लोग शान्त स्वभाव के होते हैं। कठिन और विपरीत समय में मजे से मौके की प्रतीक्षा करते रहेंगे। ज्यों ही मौका अनुकूल बैठा तो फिर पिछे मुड़ कर देखने का सवाल ही नहीं रहता। कठिन परिश्रम करना और बहादुरी के गुण बचपन से यही परिस्थितियां सहज ही पैदा करती हैं। प्रकृती का यह पाठ उनके जीवन का अंग बन जाता है।

खेती बाड़ी का काम निश्चित समय में पूरा करना होता है। ब्याह-शादी, मरण संस्कार जैसे सामूहिक अवसरों पर भी मिल कर काम करने की जरूरत पड़ती है। इस काम को गांव में ही नहीं अपितु कई गांव के लोग मिलकर खुशी-२ बड़े उत्साह से पूरा कर लेते हैं। काम को सामूहिक रूप से करने की इस प्रथा को ',भाई चाल" कहते हैं। स्थानीय शब्द भिन्न २ हो सकते हैं परन्तु अर्थ सभी का यही बैठता है। "भाई चाल" के नियम सरल तथा सर्वमान्य हैं। इनके लागू करने में कठोरता और लचकीलेपन का अभूतपूर्व सामंजस्य देखा जाता है। इनसे बाहर रहकर गांव में अलग-थलग जीवन की कल्पना भी कठिन लगती है। यह सभी की आवश्यकता है। सभी परिवारों को निकट लाना तथा मन मुटाव को मिटाना इसी प्रथा के कारण संभव होता है।

'भाई चाल' के कई रूप हैं। खेती बाड़ी के दैनिक काम जिनमें श्रम की आवश्यकता पड़ती है इसका पहला रूप है। इसमें साल भर में होने वाले कुछ काम अनिवार्य रूप से आते हैं। जैसे गोबर खेतों में पहुंचाना, गुड़ाई का काम, घास लकड़ी काटने का काम आदि। खेतों में गोबर साल में दो बार गर्मी में जेठ महीने तथा सर्दी में मगहर-पौष में डालते हैं। बोझा उठाकर ऊबड़

खाबड़ रास्तों को पार कर खेतों तक पहुंचाना काफी मुश्किल काम है। इसे पूरा करने के लिए एक परिवार एक दिन निश्चित कर लेता है। हर घर से युवक-युवतियां तथा अन्य काम करने योग्य प्रौढ़ एकत्रित हो जाते हैं। इसके लिए एक दिन पहले ही सब को सूचित कर दिया जाता है। हंसते बोलते गोबर का विशाल ढेर शाम तक खेतों में पहुंचा दिया जाता है। यहां काम का बंटवारा हो जाता है। एक दो विशेष व्यक्ति भराई का काम करते हैं। यह काफी ताकत का काम है। भरावा गांव का कोई तगड़ा हट्टा-कट्टा युवक होता है जो गोबर को किलटों और डालों में भरता है। बाकी लोग बोझा उठा-२ कर खेतों में फेंकते जाते हैं। इस काम को निबटाने के लिए 'डाक' भी लगाई जाती है जिसमें सभी थोड़ी दूरी तक बोझा ले जाकर दूसरे को सौंप देते हैं और इसी क्रम में कई हाथों से यह खेत में पहुंचता है। हंसते-बोलते कई ठहाकों में थकान कहीं नहीं दिखती।

काम पूरा होने पर 'शेज' स्थली को पूजा जाता है। यह पूजा ग्राम देवता के नाम की जाती है। सभी भाग लेने वालों के स्वास्थ्य की कामना के साथ 'चाब' बांटी जाती है। शाम को उसी परिवार के यहां सामूहिक भोजन होता है। यह केवल उन्हीं लोगों के लिए होता है जिन्होंने गोबर उठाने का कार्य किया होता है। 'भरावे को दो 'पले' घी तथा अन्य लोगों को एक 'पला' देने की प्रथा है।

यही क्रम बारी २ सभी परिवारों में तब तक चलता रहता है जब तक सब का गोबर न उठा लिया जाए। इसमें लोग बड़े जोश में बढ़ चढ़ कर भाग लेते हैं तथा काम करते हैं। सभी में यही भावना रहती है कि जब अपने घर का काम खोया है तो दूसरे का काम पूरा सम्पन्न होना चाहिए

मक्की की खेती में गुड़ाई का काम बरसात होते होते करना होता है। इसमें भी अकेला परिवार निभ नहीं पाता। इसलिए सामूहिक ब्वारी का आयोजन किया जाता है। यह दो तरह की होती है। 'बाजदी' तथा सादी। 'बाजदी' गुड़ाइ में ढोल बजाकर गोड़ने वालों को उत्साहित किया जाता है। ढोली खेत की सीत में बैठकर या खड़ा होकर ताल देता है और गुड़ाई करने वाले उस तक पहुंचने के लिए उत्सुक रहते हैं। गपें चलती हैं, शोर मचता है और सांयकाल तक काम समाप्त कर दिया जाता है। रात को भोजन सामूहिक रूप से उसी परिवार का होता है।

इसी प्रकार घास की कटाई, ढुलाई तथा लकड़ी काटने का कार्य भी सामूहिक रूप से किया जाता है। इस काम में महिलाओं की भूमिका अधिक रहती है। जहां बर्फ गिरती है उन स्थानों में घास काटकर जमा करना पड़ता है ताकि बर्फ के नीचे दबकर नष्ट न हो जाए। सर्दियों में पशुओं को चारे का भण्डारण करना पड़ता है। गर्म प्रदेशों में यह कार्य गेहूं की बुआई के पश्चात किया जाता है। महिलाएं घास काटने एक परिवार की घासनी में एकत्रित हो जाती हैं। फिर बातों ही बातों में कटे घास के ढेर लग जाते हैं। ढुलाई के काम में पुरुष भी सहायता करते है। 'कुनू' अथवा टोली में घास का सुरक्षित भण्डार कर लेते हैं। यह जमा घास अगली बरसात तक चलता है।

लकड़ी की 'छेई' या छेउड़ी के रूप में एक निश्चित स्थान पर बालन का ढेर इक्कठा रख लेते हैं। यह बरसात के दिनों में ही नहीं शीतकाल में भी काम देता है। इसका उपयोग वर्ष भर चलता है। सुविधा की दृष्टि से यह संग्रह घर के निकट ही किया जाता है ताकि रसोई तक पहुंचाने

में कठिनाई न हो। इस काम में कुछ लोग कटाई करते है। दूसरे छंटाई का जिम्मा संभालते हैं। तीसरे बोझा बना कर नियत स्थान पर जमा कर लेते हैं। इस प्रकार यह कठिन कार्य सामूहिक रूप से अत्यन्त सरल हो जाता है। इसी प्रकार धान की रोपाई आदि भी होती है।

जब किसी परिवार का कोई भी पात्र सदस्य उपलब्ध नहीं रहता तब मानवता के नाते उसे इस कार्य से मुक्त रखा जाता है। साथ ही समय २ पर उसके कार्य भी पूरे कर लिए जाते हैं। बिमारी की दशा में भी व्यक्ति की यथा संभव सहायता की जाती है। सामूहिक कार्य से ऐसा कोई नहीं रहता जो यह अनुभव करे कि वह अलग थलग छूट गया है।

दूसरी श्रेणी में, कभी कभार आने वाले उत्सव जैसे विवाह या मरण आदि आकस्मिक समस्याओं को निपटाने के लिए 'भाई चाल' की ही सहायता पड़ती है। विवाह में दूर बाजारों से सामान घर पहुंचाना, समिधा काटना, लिपाई, रंगाई सभी सामूहिक कार्य गाने की लय पर पूरे करते हैं। कई दिन पहले ही व्याहता घर (जहां विवाह होने जा रहा है) में रौनक लग जाती है। दाल, चावल की सफाई, रंगाई-सफाई का काम निश्चित रहता है जिसे बड़े चाव से सम्पन किया जाता है। हर घर से व्याहता के घर काम करने के लिए लोग विशेष रूप से आते हैं। सामूहिक भोजों में वितरण व्यवस्था इन्ही लोगों का उतरदायित्व होता है।

मरण संस्कार में भी लोग मौत की खबर सुनते ही अपना सारा काम छोड़ कर मृतक के दाह संस्कार का काम संभालते हैं। जब तक अर्थी की तैयारी होती है गांव के लोग मिलकर चिता लकड़ी श्मशान पहुंचाकर चिता तैयार कर देते हैं। यह कार्य बड़ी सर्तकता एवं सुचारू रूप से होता है। इस अवसर किसी को कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती। सभी अपनी जिम्मेदारी समझते हैं।

'भाई चाल' की यह प्रथा बड़ी प्राचीन है। यही कारण है कि यह भोले भाले किसानों के जीवन का अंग बन युगों से चली आई है। हां आज इस प्रथा में कुछ ढील भी देखी बरती जाने लगी है। इसका श्रेय आधुनिक शिक्षा, राजनीति तथा शराब को जाता है। अब लोग अधिक अन्तर्मुखी हो चले हैं। उनमें धीरज की कमी पनप रही है। अपनी-अपनी डफली अपना-अपना राग अलापने के स्वर देखे सुने जाने लगे हैं।

आधुनिकता के नाम पर परिवर्तन चाहे हो जाए परन्तु यह प्रथा हिमाचल प्रदेश के ग्रामीण स्वरूप को बनाए रखने की एक मजबूत कड़ी है। वर्षों से चली आ रही इस परंपरा में विश्वास करना ही चाहिए। इसके अभाव में ग्रामीण वातावरण की एक महत्त्वपूर्ण श्रृंखला को मिटाना होगा। विश्वास किया जाना चाहिए कि नई पीढ़ी इस प्रथा की उपयोगिता को भली भान्ति समझ कर इसे जारी रखेगी। कितना प्यारा लगता है जब गांव के सभी लोग मिलकर काम करते हैं। समाज का कमजोर परिवार भी उपेक्षित नहीं रहता। एक दूसरे का सुख दुःख देखना बांटना ही तो सच्ची मानवता है। इसका वास्तविक रूप पहाड़ों की भीतरी वादियों में बसे ग्रामीण लोगों के जीवन व्यवहार में हर कहीं देखा जा सकता है।

कहीं किसी ने जाने अनजाने किसी के साथ अन्याय कर दिया तो ग्राम देवता के प्रांगण में बड़े बूढ़े पंचों के सामने बात रख दी जाती है। इस अवसर पर सभी ग्रामवासी उपस्थित रहते हैं। पंच निर्णय सर्वमान्य एवं सर्वोपरी होता है। लोगों में आम धारणा है कि झूठ बोलने से जीभ सड़ जाएगी, चोरी करना पाप है और इसे बैल बनकर भरना पड़ता है आदि। इन बातों को वकालत से नहीं देखा जाता इसके पीछे जो व्यवस्था बनी वह भावना कितनी ऊंची है। गीता में वर्णित कर्म योग के जीते जागते प्रतिरूप यह लोग विकट से विकट परिस्थिति में भी विचलित नहीं होते।

अपने रास्ते वे स्वयं बनाते संवारते हैं। पीने के पानी स्रोत साफ करने के लिए दूसरों की सहायता याचना नहीं करते। रूखी सूखी खा लेते हैं। गाढ़ा मोटा पहन लेते हैं। बाहर से पत्थर जैसे कठोर दिखने वाले पहाड़ी मन के बड़े सरल, कोमल एवं सहनशील होते है। भाई चाल इनके जीवन में सोने पर सुहागा है।

गांव व डा० मांजू वाया अरकी
जिला सोलन (हि० प्र०)
१७३२०८

फागली : देवगाथा और भविष्यवाणियों का पर्व

सुदर्शन वशिष्ठ

कुल्लू के देवताओं को सुप्त अवस्था में जागृत करता है फागुन, जब मनुष्य-वनस्पति की सुप्त-शक्तियां एक बारगी फूटकर बाहर निकलता है। इस फागू के मौसम में यहां मनाई जाती है फागलियां, तकरीबन हर देवता के यहां फागुन की सक्रान्ति से आरम्भ होकर यह फागली महीना भर चली रहती है, एक गांव से दूसरे में—बासन्ती हवा की तरह कायस से होकर ये पर्व जाणा, हलाण होता हुआ सारी रोपड़ा, मलयाणी तथा पीज तक पहुंच जाता है।

देवगाथा और भविष्यबाणियां :

अपनी सुप्त अवस्था में भी ये देवता जागृत रहते हैं और कहीं जाकर युद्ध करते हैं। अपनी भारथा में ये युद्ध में जाने और हारने-जीतने की बात आकर अपनी प्रजा को बताते हैं। अपनी भारथा में ये पूरातन किस्सा दौहराते हैं। युद्ध में हारने या जीतने की बात नई होती है। कभी देवता हारते हैं, कभी जीतते हैं, फिर गांव के लिए वर्षा, अकाल, बीमारी, खुशहाली आदि लाते हैं और उसी के अनुरूप अगामी वर्ष में अच्छा या बुरा होने की भविष्यवाणी करते हैं। अपने इलाके में मुख्य देवता प्रभावी रहता है और अन्य देवता उसके सहायक के रूप में होते हैं। इसलिये कई स्थानों पर संयुक्त रूप से फागली मनाई जाती है।

सारी फागली :

सारी गांव कुल्लू के ऊपर पहाड़ी पर अन्तिम गांव है। इसके नीचे भेखली देवी है। यहां का देवता 'सारी-नाग' नाम से जाना जाता है। यहां से आगे सारी-जोत है। जहां भादो में एक विशेष मेला लगता है। सारी फागली २६ फरवरी, को हुई।

देवी का प्रस्थान :

लगभग चार बजे सायं देवी का प्रस्थान सारी की ओर हुआ। इस दिन देवी या देवता रथ नहीं सजता, कुछ साज-सामान ही बाहर निकलता है। देवी का पुजारी, गूर झडियों आदि सहित ऊपर की ओर चल दिये। भेखली से कुछ ऊपर चढ़ कर वे रास्ता छोड़ खेतों के बीच हो कर चलने लगे। यही देवी का रास्ता है। इन खेतों के ठीक ऊपर सारी-गांव दिख रहा था।

लगभग आधा रास्ता तय कर लेने के बाद देवी के नरसिंगे बजाये गये। ऊपर रखे देवता के थौंसे की चोट ने इसका प्रत्युत्तर दिया। फिर काफिला आगे चल दिया। नरसिंगों को बजाना देवी के आने की सूचना थी जिस का जबाब ऊपर थौंसे की चोट से दिया गया। रास्ते में फिर से दो बार नरसिंगे बजाये गये। अपने घरों से निकले ग्रामीण देवी को धूपित कर रहे थे। देवी की आगवानी के लिये भेजा देवता का बाजा नीचे आ गया था वहां से बाजे सहित सभी आगे बढ़े।

देवता के मंदिर के आगे बहुत सी झाड़ियां इक्ट्ठी की हुई थी। देवी के पहुंचते ही उनमें आग फूंक दी। वहां खड़े बाजों ने एक बार पुनः आगे बढ़ कर देवी की आगवानी की।

गूर खेल :

सभी गूर धूप आदि देने के बाद मढ़ को चले गये जहां उन्होंने अपनी वेशभूषा पहन ली। देवता के मन्दिर के आगे आकर भेखली के गूर ने उलटवाजियां खाते हुये मन्दिर की ओर प्रस्थान किया। उसके बाद वह भागता हुआ नीचे जल स्रोत में नहाने चला गया। वापस आने पर वह नहाया हुआ तो वह लगता नहीं था अलबत्ता शरीर पर पानी के छिटें अवश्य थे। अब गूरों ने अपने चोले उतार कमर में लपेट लिये और गूर-खेल आरम्भ हुई। सबसे पहले भेखली ने नृत्य करते हुये चारों दिशाओं में नमन किया। फिर सब गूरों ने भी वैसे ही धूप लेकर चारों दिशाओं को नमस्कार किया। अन्त में भेखली के गुर से मिलते थे। भेखली का गूर सब को नचाता। नृत्य में कटार व संगल का प्रयोग भी किया जा रहा था। इस प्रक्रिया में देवता का बाजा अपनी विशिष्ट धुन में बजता रहा।

देव गाथा भविष्यवाणी :

अब सभी गूर घुटनों के बल बैठ गये। देवता के मन्दिर के दरवाजे के ठीक सामने बैठा था भेखली मैया का गूर। उसके दांई ओर पंक्ति में बैठे थे तीन गूर –पहला बनोगी गांव के काश नारायण का, दूसरा नलाज गाँव के नाग-नारायण का और तीसरा सारी-नाग का।

अब भारथा आरम्भ हुई। भेखली मैया ने अपनी कथा सुनाई कि वह कहां से चली, कहां पहुंची, कहां जोती, कहां हारी, क्या पाया, क्या खोया। इस वर्ष देवी जीत कर आई थी। अतः यह वर्ष शुभ न था। यदि देवता हार जाये तो वर्ष शुभ समझा जाता है और यदि जीत जाये तो अशुभ। इसी तरह सभी गूरों ने अपनी २ कथा सुनाई। कथा कोई विशेष लम्बो न थी। पता चला कि वे संक्षिप्त रूप में ही सुना रहे हैं। प्रायः इस कथा के बाद पुराने समय और आज के 'कलजुग' की तुलना की जाती है। देवता इस बात से कुपित होते हैं कि कलजुग में मनुष्य का दीन धर्म कुछ नहीं रहा है। ज्यादातर इसी तरह की टोका-टिप्पणी मनुष्य पर की जाती है। ग्रामीण बड़ी श्रद्धा से बैठे यह सब सुन रहे थे। गूर जमीन के पास सिर ले जाकर घुमाते हुये बोल रहे थे : 'हारिबिन्दरा। गौ ब्राह्मणो।·······' ग्रामीण कुछ देर बाद हांक लगाते : 'अई ऽऽऽ परमेसरा।' देवी के कहने पर : 'अई माया' कहते गूर पूरी तरह से उभरे हुये प्रतीत नहीं हो रहे थे। ऐसा लग रहा था कि वे अपने से ही बोल रहे हैं। जो स्थिति पूरी तरह देवता के आने पर होती है, वैसी उनकी नहीं थी। भेखली के गूर की एक बांह कांप रही थी। उस ऊंचाई वाले स्थान पर शाम के समय जब आकाश में बादल थे। ठण्ड भी काफी थी। यदि गूर रटा-रटाया, शिक्षक गूर द्वारा सिखाया ही बोलते हों तो देवता के आने की प्रतीक्ष[illegible] [illegible]कता भी क्या है। जैसा कि वहां
[illegible]ा ही बोलना आरम्भ कर दिया, किसी [illegible] [illegible]ता आयेगा तभी
[illegible]येगा बल्कि वारी २ सभी [illegible]
[illegible]ों के समय गूर [illegible]

काम्पू

· पन्ना लाल जोगटा

भारतवर्ष के प्रमुख साहित्यकारों एवं युग-द्रष्टाओं का नारी के प्रति सहिष्णु दृष्टिकोण नहीं रहा हैं यहां तक कि महान दार्शनिक कबीर ने नारी को :—

नारी की झाईं परत अन्धा होत भुजंग
कबीरा तिनकी कौन गति नित नारी के संग।

एवं

शुद्र-ढोल पशु नारी
ये सब ताड़न के अधिकारी;

की संज्ञाओं से नारी की भावनाओं पर कुठाराघात किया है। लेकिन नारी सर्वदा उपेक्षित नहीं रही है। प्राचीनकाल में रजिया बेगम, झांसी की रानी, लक्ष्मीबाई, सरीखी वीरांगनाओं के हाथ में राज्य की बागडोर रही है। हिमाचल प्रदेश के जन-जीवन में भी नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है और वे सर्वदा नारी के रूप में प्रतिष्ठित रहीं हैं जिसका ज्वलन्त उदाहरण लोकगीत की नायिका काम्पू है। काम्पू जो इस गीत की नायिका है माता-पिता की लाडली इकलौती बेटी व सास-श्वसुर की सुश्रुणी तथा आज्ञाकारिणी, पति की प्रियतमा एवं ग्राम की एक आदर्श नारी है। जैसी की ग्राम धारणा है इस प्रकार के सज्जन पुरुष-स्त्री, मनुष्य मृत्यु-लोक में अल्पायु जीते हैं—सम्भवतया स्वर्गलोक में भी ऐसे मनुष्यों की आवश्यकता रहती होगी—नायिका भी इस धारणा की अपवाद नहीं है। काम्पू सबकी आंखों का तारा होते हुए भी प्रसव की वेदना से काल के क्रूर हाथों से बच नहीं पाई तथा अपने प्रिय की राह देखते-देखते काल-कलवित हो गई। निर्मल निलाम्भ्र की भांति इस पवित्रात्मा के पति होने का श्रेय बापू हरी राम ग्रामवासी खौड़ी सब-तहसील ननखारी 'रामपुर बुशैहर' को जाता है। काम्पू के भ्राता का नाम भगत राम तथा पिताजी का नाम दौलत राम था। गीत के बोलों के अनुसार इनके पतिदेव रामपुर बुशैहर में कार्यरत थे तथा पत्नी की अन्तिम सांसों के समय उनके विशेष दूतों द्वारा रामपुर से बुलवाया गया था; परन्तु जब तक वे अपनी प्रसव-पीड़ित पत्नि के समक्ष पहुंचते तब तक बहुत देर हो चुकी थी। नायिका को भी जैसे अपने पतिदेव के दर्शन की ही अन्तिम अभिलाषा थी। पति के पहुंचते ही उनके प्राण पंखेरू उड़ गए।

जैसा कि अधोलिखित में उधृत है काम्पू कर्मठ तथा निष्ठावान नारी थी। अस्वस्थ तथा प्रसूति-अवस्था के समय भी उनका ध्यान अपने खेतों की ओर जाता है। वे कटि पर गाची 'कपड़ा' लपेट कर अपने खेतों में बीयू नामक अनाज काटने जाती है। नायिका की कर्मठता एवं कर्तव्य

परायणता का लोक कवि ने कैसा सरस वर्णन किया है तनिक देखिये तो :—

बीथू रौ काटणा लै बीजणा खे गीहूँ,
आशखी बरशा शाशुआ मां मरु के जीऊ।
काँपू बामा नेगटे घूड़े आरे गाचे
ऋलो शाशुआ डोखरी के बीथू पाईं काटे

भारतीय नारी का दृष्टिकोण सर्वदा आदर्शवादी रहा है। गृहस्थ के लिये वे सर्वस्व न्यौछावर कर लेती हैं। जब नायिका को किसी भी प्रकार आराम नहीं मिलता तो बड़े-बूढ़े प्रथानुसार देवताओं को बकरे की बलि देने का निश्चय करते हैं परन्तु नायिका बलि के बकरे के लिये नकारात्मक उत्तर देते हुए कहती है कि उनके जीवन एवं प्राणों की यदि ईश्वर को आवश्यकता होगी तो बकरे की बलि देकर भी वे बच नहीं पायेंगी। अतः बेचारे इस पशु की जान-लेवा प्रक्रीया से क्या लाभ :

मेरी तैंहई शौरेआ बाकरो न हिच्छा,
जिया लागा जिन्दड़े तिया लागदो न किच्छा।
मेरी तैंई शौरेआ बाकरु न खोए,
जिया लागा जिदड़े तिया लागदो न कोए।

दूर-दराज के क्षेत्रों में डाक्टरी-परिचर्या तथा औषधियों का प्रायः अभाव ही रहता है उस पर प्रसव की वेदना प्रसूता-नायिका जीवन के प्रति आश्वस्त नहीं हुई तभी तो अपनी सखी सहेलियों को आग्रह करती हुई कहती है कि मेरे बालों की चोटी बहुत सुन्दर एवं आकर्षक बनाना पता नहीं हमारा पुनः मिलन होता है या नहीं।

संगरणीया साथणिया ओबरा के हांडो,
ओबरा रे देवला हौले छेवड़ी रो कांड़ों।
संगणीया साथणीया बालो मेरे जूंटे,
काला पोरु दादिया म्हारे सोंगता चूटे।
संगणीया साथणियों कौरो मेरे कारे,
ओबरा दे देवला जोंआ पापी रे दूवारे।

प्रसव-वेदना से पीड़ित नायिका अधीर होकर पति की प्रतीक्षा कर रही थी। उनके आने पर अपने कोमल हाथ पति के हाथों में देकर तथा पतिदेव के हस्त का अन्तिम चुम्बन करते ही नायिका सर्वदा के लिये इस संसार से विदा लेती है। लोक गीत के हृदयविदारक बोल का निम्न वर्णन :—

खाड़ा न जांईदा मेरा परैणीदा लोगू,
ओरु कौरा हायडू पोरु देऊ खोवू।

लोकगीत का घटना-क्रमानुसार वर्णन अधोलिखित किया गया है :—

चौऊ कांण्डा री काल्का आणा लोटडू आ पाणे,

कांपू गागो नेगटे हरी बाबू रे बवाणे
तेरो शौरो दलते रामा धरा रो गेऊ,
मैंचा खे मेरीग्रा बहुग्रा डिवणे न देऊ।
तेरा शौरा दलते रामा नैरने लाए,
ग्राग्रो महिनो बहुग्रा मैंचा न जाए।
शाशु जांऊ हों शौरा री धैड़ी री बांदे,
खांदे किछ न मांगदे मां हों मिलदे जांदे।
शाशु छाड़े शौरेग्रा सौरे सबाए,
चीजो कौरा चौथा बहुग्रा इयरी ग्राए।
शाशु छाड़े शौरेग्रा सरे सबाए,
सूला डैंग्रा बहुग्रा लोटे फशड़े न जाए।

लोक-कवि गीत का प्रारम्भ करते हुए कहते हैं कि काम्पू नायिका बाबू हरिराम की ग्रर्धांगिनी थी जिनके ग्राम की चोटियों पर चार काण्डों 'पहाड़ के उंचे शिखरों' पर काली माता के मन्दिर स्थापित थे। प्रत्येक प्राणी को ग्रपनी जन्मभूमि प्रिय होती है। नायिका भी ग्रपने पीहर में माता पिता एवं भ्राता को मिलने के लिये व्याकुल हो उठी तथा ग्रपने श्वसुर से पहीर जाने की ग्राज्ञा मांगी। श्वसुर दौलतराम ने बहू को समझाते हुए कहा कि गर्भावस्था में लम्बी पद-यात्रा घातक सिद्ध हो सकती है। नायिका ने पुनः ग्राग्रह किया कि वे तो पीहर जाकर केवल माता-पिता को ही मिलेंगी तत्पश्चात् तुरन्त ही लौट ग्रायेगी। इस प्रकार नायिका ग्रपने बड़ों की ग्राज्ञा प्राप्त करके प्रसन्नता पूर्वक ग्रपने पीहर की ग्रोर चल पड़ती है।

काम्पू के भ्राता भगतराम दूर से ग्राती हुई बहिन को पहचानते हुए ग्रपनी मां जी से कहते हैं कि यह मन्थर गति तो बहिन की ही चाल लगती है। नायिका पीहर पहुंचकर बरामदे में बैठ जाती है तथा भाई बहन पीने को पानी के स्थान पर दूध का लोटा लाते हैं। तत्पश्चात नायिका परिवार के सदस्यों की कुशल-क्षेम पूछ कर ग्राश्वस्त हो जाती है। मां के लिये तो बेटी जान से भी ग्रधिक प्रिय होती है उस पर काम्पू मां की इकलौती लाडली थी ग्रतः माता जी उसी समय मिष्ठान इत्यादि सहित भोजन तैयार करके पुत्री को भोजन करने हेतु ग्रामन्त्रित करती है। नायिका तो ग्रपने श्वसुर को दिये गये वचनों के प्रति प्रतिश्रुत है ग्रतः ग्रम्मा को कहती है कि हे ग्रम्मा! मैं तो केवल तुम्हें मिलने ही ग्राई थी, भोजन की इच्छा नहीं है, लेकिन मां ने पुत्री को मनवाकर भोजन करवाया ग्रौर उसी समय नायिका पीहर के सदस्यों को प्रणाम करने के पश्चात वापिस लौट ग्राती है। लोक गीत के शब्दों में :—

भाइया तेरा भगतेरामा दूरे का शाए,
पारे ग्रोरु इजीया कुए कांपू नौरे ग्राए।
ग्राशिया पहुंचे कांपू ढांपी गाशे बोठा,
भाई ग्राणा भगतेरामा पाणिग्रा रा लोटा।

पाणी पीश्रा न कांपूश्रा दादा लागा ले पियासा,
मां श्राणा कांपूश्रा तेरे दूधा रो गिलासा।
पहुंचदा गाढ़े मूंढा रे मंडाए,
कैणे हौले दादुश्रा तेरे ललडे भाए
भाई री नीरणेश्रां मूं पेवका श्राए।
मां चाणा ले कांपूश्रा तेरे गुलुए रसोए,
श्रा भीता मेरीश्रा धीया हाथडू धोए
भीतरा नाहीं हों श्रांदे खाणो बी न खांदे,
तों श्राए मिलदे श्रावा जांदीश्रा जांदे।
मां दैश्रा ले कांपूश्रा तेरे श्रापणो नाश्रों,
काला डैंश्रा ले पोरशे सीती श्राणू ले हांश्रों।
भाईया छाड़े भगते रामा सरे सबाए,
सुला डैंश्रा कांपू श्रा दादा लोटे फशडे न जाए।
तेरा शौरा दौलतेरामा दूरे खा शाए,
एजे बोली ले डालीया भला घरा रे जाए।
जेजा बोली तो दूसा सेजा दूसा गोए श्राए।
बीथू रौ काटणा लै बीजणा लै गीऊं।
श्राशखी बरशा शाशुश्रा मां मरी खे जीऊं !
काम्पू बामा नेगटे घूड़े श्रारे गाचे,
चालो शाशुश्रा डोखरी के बीथू पांई काटे।
श्राळीया पहुंचे बोठे बाणना बठोंएं
पेटा लागी बेदणी मेरा महश्रो न चेंई।

श्वसुर दौलत राम ने दूर से ही अपनी बहू को पहचान लिया तथा अपनी पत्नी से बहू की प्रशंसा करते हुए कहा कि बहू ने समयानुसार आकर मर्यादा का पालन किया है। जो एक बड़े वंश की पुत्री के लिये वांछित है। नायिका घर में आकर अपने खेतों की ओर दृष्टि डालते हुए बीथू नामक अनाज को काटने के लिये कमर में कपड़े की पट्टी बांध कर चल पड़ती है परन्तु खेत में उन्हें पेट की असह्य पीड़ा आरम्भ हो जाती है तथा वह वापिस लौटती है।

श्वसुर बहू के अचानक पेट दर्द से घबराकर मन ही मन अपने ईष्ट देवों को खाडू-बकरों का पूजन करने का संकल्प करते हुए कहते हैं कि हे देव ! मेरी लाडली बहू को स्वस्थ करवा दे नायिका श्वसुर को नम्रतापूर्वक कहती है कि मेरे जीवन का उद्धार बकरे की बलि देकर नहीं हो पायेगा क्योंकि जहां मेरे जीवन की आवश्यकता है वहां बकरे की जान लेकर कोई लाभ नहीं होगा नायिका को प्रसव पीड़ा का ज्ञात होता है तथा अपनी सहेलियों से प्रसव कक्ष की ओर चलने का आग्रह करती हुई कहती है कि हे सखियों ! मेरे बाल संवार-शृंगार इत्यादि विधियां पूर्ण कर लो

ईश्वर जाने पुनः मिलन हो भी पायेगा या नहीं क्योंकि प्रसूति कक्ष तो साक्षात यमराज अर्थात् मृत्यु का द्वार होता है।

बोंदा शौरो दौलतेरामा बाकरु हूला,
लागो-जोगों बहुवा का मेरी डैंगो चैंई दूरा
मेरी तैंई शौरेया जोड़े बाकरू न खोए,
जिया लागा ले जिदड़े तिया लागदो न कोए।
मेरी तेई शौरेया बाकरू न हिच्छा,
जिया लागा जिदड़े तिया लागदो न किच्छा।
संगणियां साथणियां ओबरा खे हांडों,
ओबरा रे देवला होले छेवड़ी रो कांडो।
दुई बेशी छेवड़ी चौन सवाई,
किशी-मिशी बेदणी गाची कमरु दे आई,
संगणियों साथणियों बालो मेरे जुंटे,
काला पो-रु दादीया म्हारे संगता चूटे।
संगणियों साथणियों कौरो मेरे कारे,
ओबरा रे देवला जोआं पाणी रे दुवारे।
लालटिना बैंटरी जालो जोखटी मसाला,
संगणिया साथणिआं ओबरा खे चाला।

प्रसूती कक्ष में पहुंचकर काम्पू की प्रसव पीड़ा असहय हो जाती है तथा नायिका अपने देवर को पूनरण ग्राम से गाजरु नामक सवाई 'दाई' लाने के लिये भेजती है। साथ में ही दो पुरुषों को नायिका के मायके को सन्देश पहुंचाने के लिये भेजा गया। नायिका के मां-बाप पुत्री की गम्भीर स्थिति सुनकर अधीर होकर तुरन्त उसके पास पहुंच जाते हैं तथा पुत्री का कुशल-क्षेम पूछते हैं। उत्तर में काम्पू की आंखों में आंसू डब-डबा आते हैं और वह कहती है कि हे मां! कुशल क्षेम क्या पूछना, सम्भवतया इस मृत्युलोक से मेरा दाना-पानी समाप्त प्रायः है। इस करुण सम्वाद का वृतान्त लोक गीत के निम्न बोलों में है :—

कना देवरा बागूआ लोगा पूनरणा खे जाए,
सीती आणने कोलणा सीती गाजरु सुआए।
एकी नोटी आदमीया मैंचा खे जाए,
ईजी मेगी बापूआ दैआ खबरा लाए।
इजी बापू काम्पू रा आ बोठा शरैणा,
खाड़े उठा कांपूआ धीया माणछा परैणा।
इजी-बापू काम्पू रा आ बोठा ला फेरा,
किया लागी कापूआ धीया बेदणी तेरा।
खड़े नाही जांईदा मेरा करीदे न सूए,

एती मतलोगा दे मेरे लिखदे हुए।
कना देवरा बागुआ लोगा खमाडी खे जाए,
देई खमाडी देआ पगड़े कराऐ।
देई खमाडीया गाड़े शिरा रे रोशा,
मेरी नांई काम्पू खे दाए न दोषा,
दे देआ खामाडे शेरशो लाला,
कालीया रे चिटका लागे किछी नाहीं चाला।

उपरोक्त बोल के अनुसार नायिका के छोटे देवर को देवी खमाड़ी की ओर पूछने भेजा गया। देवी खमाडी उत्तर देती है कि यद्यपि उनका तो कोई गीला-शिकबा नहीं है तथापि काम्पू को महाकाली की छाया पड़ी है अतः वे काम्पू की शोचनीय दशा का कुछ भी समाधान नहीं कर सकतीं।

काम्पू की चिन्ताजनक स्थिति देखकर उनके पति बाबू हरीराम को श्री रामपुर व्यक्तिगत संदेश भेजकर बुलवाया जाता है। बाबू हरीराम रात-दिन एक करके हाथ में टार्च, लालटेन इत्यादि का प्रयोग करते रातों-रात आते हैं तथा पहुंचते ही पत्नी का हाल पूछते हैं। नायिका की आखों से अश्रुधारा वह निकलती है तथा वे केवल पति के हाथों को अपने हाथों में लेकर कपोलों से हाथों का स्पर्श करते हुए स्वर्ग सिधार जाती है। माता पिता, परिवार-सदस्य तथा ग्रामवासी हतप्रभ विलाप करना आरम्भ करते हैं। मर्मस्पर्शी एवं शोकाकुल गीत की अन्तिम पंक्तियां निम्न दी गई हैं :

एवा नोटी आदमीयां राईपुरा खे जाओ,
मरा माल्का हरिया रामा ओरु बदाओ।
चिठे दिणे शराखे हरी खे तारा,
घरा आ हरिया तेरे काम्पू बमारा।
तेरो माल्का हरिया रामा राते आ लो दिना,
एकी हाथा बेट्रे कौरा दूजा लालटेना।
आवी राचे काम्पू रा लागा ताओ शिआओ,
थोड़े रौए पछोंडे मेरो माल्का न आओ।
आओ माल्का हरिया रामा बोठो शेरैणा,
खड़े जा ले डालीया मेरी मांण्डा परैणा।
खड़े ना जाईदा मेरा परैणींदा न लोगू,
ओरु कौरा हाथड़ू आपणा पोरु देउ खोबू।
गढ़ा तेरा नगरा रा पौड़ा नजाण,
बोठी बैली काम्पू रा डूबा पाराणा।
मा रौआ काम्पूआ तेरे कूजा रे कले,
मेरे गोए मेरीया धीया नेवते गौले।
माना शोरो दलतेरामा मूकुआ हियो,

खाड़ा-खाड़ी बहुग्रा धीया एजो का कियो।
कना देवरा बागुग्रा लाग्रो मूल्का दे रोए,
तों नोरो भाभीया नाहीं गांवा दे कोए।
ईजे-बापू काम्पू रे रौग्रा शीरो जुग पलूं,
तेरी सरेखे रे धीया देखे ल बलू।

इस प्रकार इस लोक गीत में गांव की भोली-भाली नारियों की कर्तव्य-परायणता, कर्मठता निष्ठा तथा ग्रात्म-उत्सर्ग का सरस वर्णन करके यह लोकगीत किसान एवं मध्यवर्ग की नारियों का चित्रण करता है।

निदेशालय, उद्यान विभाग,
हिमाचल प्रदेश,
नौबहार, शिमला-१७१००२

ब्रह्मौरी जन जीवन की एक झलक

जान्धर जाणा जीणा

भक्त राम द्विवेदी

हिमाचल के जिला चम्बा में ब्रह्मौर नाम का एक स्थान है जो छठी शताब्दी के आरम्भ से ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्व तक चम्बा का राजधानी स्थान रहा है। आजकल यह स्थान चम्बा की तहसील ब्रह्मौर का मुख्यालय है। जान्धर इसी तहसील का लोक शब्द है। साधारणतया जान्धर उन स्थानों को कहा जाता है जहाँ इस तहसील के लोगों द्वारा जाया जाता है। उन स्थानों में जिला चम्बा के और काँगड़ा के निचले भाग हैं जहां कम सर्दी पड़ा करती है। कुछ स्थान चम्बा और काँगड़ा से लगते पंजाब के भी इस कोटी में आ जाते हैं। कब और क्यों जाया जाता है इस का मुख्य कारण है यहां की भौगोलिक स्थिति। क्योंकि भौगोलिक स्थिति अनुसार समुद्र तल से साढ़े छः हजार फुट की ऊंचाई से लगभग १२ हजार फुट ऊंचाई तक रहने वाले इन लोगों को जहाँ कड़ी सर्दी का सामना करना कठिन रहता है वहाँ अधिकतर भाग दुर्गम, सीधी ढलान और कष्ट साध्य होने के फल स्वरूप एवं कृषि योग्य भूमि की न्यूनता रहने से अनेक असुविधाओं से जूझना होता है। उपभोक्ताओं की वर्ष की आश्यकता पूर्ति यहां रहते हो नहीं पाती, इसलिये शरत् ऋतु के उत्तरार्ध से बसन्त के पूर्वार्ध तक सर्दी से त्राण पाने और दूसरी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु इस तहसील के अधिकतर लोग ४ हजार फुट से कम ऊंचाई वाले स्थानों को चले जाया करते हैं। यही गमन स्थानीय बोली में जान्धर कहलाता है। किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि सभी लोग यहां से चले जाया करते हैं किन्तु जो रहते हैं बहुत अधिक नहीं। ऐसी भी बात नहीं है कि चम्बा के अधिक सर्दी पड़ने वाले दूसरे स्थान हैं ही नहीं। बहुत हैं, परन्तु ब्रह्मौर जैसी अनेक असुविधाएं वहां बहुत कम हैं। क्योंकि यहां के अधिक तर लोगों का व्यवसाय है भेड़,बकरियों का पालना। उपरोक्त दिनों में अधिक बर्फ पड़ जाने के फलस्वरूप पालित पशुओं के लिये चारे की न केवल समस्या अपितु अभाव सामने आ जाता है। इस लिये भी बिना बर्फ वाले स्थानों में चले जाना आवश्यक ही बना है।

स्पष्ट हो गया कि यहां के निवासी सर्दी के दिनों में निचले भागों में चले आते हैं, परन्तु पीछे छोड़ी गृहस्थी की व्यवस्था का प्रश्न भी तो सामने आ जाता है। क्योंकि सभी कुछ न ले जा सकने के कारण शेष छोड़े वस्तु जात की सुरक्षा का होना भी तो अनिवार्य कार्य है। बिना चौकीदारों, पहरेदारों के यह काम होने का नहीं। चौकीदार पहरेदार रखे जाते नहीं, फिर भी सुरक्षा में कोई कमी नहीं देखी जाती। ऐसा इस लिये कि किसी न किसी वर्ष प्रत्येक गृहस्थी को जान्धर जाना ही होता है, घर गृहस्थी पूरी बटोरी नहीं जा सकती। अतः जान्धर चले गये परिवारों की सम्पूर्ण वस्तु राशि को कोई किसी तरह क्षति पहुंचाने की बात सोचता तक नहीं। कभी किसी २ गांव में दो तीन परिवार सर्दी का सम्पूर्ण प्रबन्ध करके अपने गांव में ही रह जाते हैं और चले गए

परिवारों की सम्पूर्ण वस्तुओं की देख-रेख भी करते रहते हैं। जिन गावों में पीछे कोई रह नहीं जाता वहां की सुरक्षा स्थानीय लोगों की भलमानुषीयत किया करती है। कोई किसी की कोई वस्तु चुराना तो दूर उठाता तक नहीं। किसी तरह की क्षति पहुंचाना पाप समझा जाता है। इमानदारी, भोलापन, निश्छलता, निष्कपटता का जामा पहने कितने भले लगते हैं ये लोग। कलियुग में भी सत्युग के दर्शन। विकल्प तो प्रत्येक स्थान पर हो जाते हैं किन्तु इस शिव-भूमि पर ऐसा नगण्य के बराबर ही पाया जाता है। इसलिये जा . र जाते समय कोई घर को ताला नहीं . ाता, लुकाव छिपाव भी नहीं करता। केवल कपाट वायु से खुल जाने से रोकने के लिये सांकल या रस्सी बांधी जाती है। लगभग छः माह उपरान्त स्वयं पहुंच कर द्वार खोले जाते हैं। जो जहां रखा . ा है वहीं पाया जाता। रामराज्य का स्मरण बड़ा सुखद लगने लगता है।

उपरोक्त असुविधाओं को देखते हुए यहां के बहुत से लोगों ने चम्बा के निचले भागों, जिला कांगड़ा, और पंजाब के क्षेत्रों में भूमि खरीद कर वहां भी घर गृहस्थी बना ली है। इस से जहां दूसरों की मट मजदूरी से थोड़ा छुटकारा मिला है वहां सरकार की तरफ से मिलने वाली सुविधा दोनों ओर से प्राप्त किया जाने लगा है जो लोग निचले भागों में भूमि खरीद न सके लगभग छः माह तक जहां जाते हैं मेहनत मजदूरी और जिस-२ के घर में रहते हैं उसका घरेलु कार्य करते हुए कुछ कमा भी लेते हैं तथा सर्दी के दिन भी काट लिया करते। पुनः ब्रह्मौर को लौटते समय चगेरें, टोकरियां, भतावड़े, भतावड़ियां, छज, चावल आदि अपनी-अपनी आवश्यकता की वस्तुएं भी लेते आते हैं।

कृषि

असूज और कार्तिक माह में जौ, गेहूं बीज कर ये लोग जान्धर चले जाते हैं और चैत बैशाख में लौट कर मक्की बीजा करते हैं। बीजे हुए जौ, गेहूं आषाढ़ मास तक पकते हैं। अतः कृषि भूमि का दुगना होना आवश्यक रहता है। इसी कारण यहां की भूमि एक फसली कहलाती है। शीतप्रायः स्थान होने से धान की कृषि सफल नहीं होती। अतः चावल का स्थान लेने वाले अन्न हैं चर्णे, कौणी, एक विशेष प्रकार की भांग। दालें प्रायः सब तरह की उपजायी जाती हैं, जिनमें माह, मुंगी राजमाह विशेष स्थान बनाए हुए हैं। सब्जियां भी लगभग सब तरह की उत्पन्न हो जाती हैं केवल थोड़ा सा भेद बीजने और काटने का अवश्य रहा करता है। कोदो, सवां भी खूब उत्पन्न होते।

व्यवसाय

भेड़ बकरियों के लिये चरागाहों की अधिकता रहने से भेड़ बकरियां पालना यहां के निवासियों का प्रारम्भिक व्यवसाय है। अतः ऊन से बनने वाली वस्तुओं का विक्रय, भेड़ों, बकरी, बकरों का विक्रय आय का अच्छा साधन बना रहता है। कुछ ऐसे व्यक्ति भी हैं जिन्होंने साथ २ सेब आदि के बगीचे लगा कर एक और साधन आय का बना लिया है।

क्योंकि स्थान २ पर सरकार ने स्कूल खोल दिये हैं। फलस्वरूप शिक्षा सुविधा प्राप्त हो जाने से नौकरी पेशा भी अपना स्थान बना रहा है। कुछ होनहार ऐसे भी सामने आ रहे हैं जो

आई. ए. एस. अधिकारी बन गए हैं। कुछ राजनैतिक दंगल में विजय प्राप्ति हेतु मसल बनाते भी दिखाई देते हैं। कुछ लोग धूप, कौड़ आदि पहाड़ी जड़ी बूटियों के विक्रय, मेहनत, मजदूरी करके अपनी आजीविका बनाए दिखाई देते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो भेड़ों वालों से ऊन खरीदकर कम्बल आदि तैयार करके आजीविका चलाते हैं। राज, बढ़ई तो इतने सिद्धहस्त हैं जिनकी कला कृति देखते ही बनती है। बढ़इयों की खुदाई कला, लकड़ी के विविध वर्तन तो इनकी कला के अनूठे प्रमाण हैं।

आचार विचार

बदलती हुई परिस्थितियां प्रायः आचार विचारों को भी अछूता नहीं छोड़ती तदपि कुछ ऐसे सांसारिक दृढ़ आधार होते हैं जो अपना स्थान बनाये ही रहते हैं। आज किसी स्थान या भाग को भले ही पिछड़ा अविकसित और अशिक्षित हम कहें या मानें किन्तु उसमें आरम्भिक काल की कुछ ऐसी विशेषताएं, मान्यताएं और भावनाएं पाई जाती हैं जिनकी आवश्यकता आज कम अनुभव नहीं की जा रही। मातृ देवो भव। पितृ देवो भव। अतिथि : देवो भव। जैसी विचारधाराओं पर आचरण करने वाले ब्रह्मौर निवासी आधुनिकता से तो अवश्य थोड़े नीचे हैं परन्तु भावना जगत में उतने ही ऊंचे भी हैं।

प्राकृतिक कठिनाइयों के साथ २ रहने वाले ये लोग पूर्ण आस्तिक, देव पूजक, शिव भक्त और शाक्त हैं। जादू टोना, टोटका, भूत, प्रेत, डाकनी, शाकिनी, योगिनी और झाड़ फूंक पर विश्वास रखते हैं। किसी भी कठिनाई के निवारण हेतु देव-मनौती करना, ऐसा करने से मनोरथ पूर्ति हो जाना, मन्त्र विधा से, जादु टोना दूर हो जाना; न जाने इन का अन्ध विश्वास है अथवा दृढ़ विश्वास किन्तु ऐसा होता तो सब कुछ देखा जाता ही है।

वैसे तो चम्बा के सब आरम्भिक निवासी शिवोपासक रहे हैं, शाक्त हैं किन्तु ब्रह्मौर निवासी तो तब से अब तक पूर्णतया शैव और शाक्त ही हैं। किसी भी बात पर शिवजी महाराज की दुहाई, शपथ एक अकाट्य प्रमाण माना जाता है। कोई भी शुभ संस्कार हो शिव पूजन सर्व साधारण की बात है। विवाह में शिव पूजन, मुंडन संस्कार पर शिव पूजन मनौती शिव पूजन की, कष्ट निवृत्ति, मनोरथ पूर्ति कभी भी शिव पूजन के महत्त्व को छोड़ा नहीं जाता। शिव पूजन को न केवल ब्रह्मौर में अपितु सारे चम्बा जिला में 'नुआला' कहा जाता है। नुआला (शिव पूजन) शिवजी पर अटल श्रद्धा और भक्ति भाव का प्रत्यक्ष प्रमाण है। शिव के साथ २ शक्ति पूजन भी बहुत हुआ करता है। शक्ति पूजन में जागरण विशेष श्रद्धा का सूचक है। स्थान २ पर जैसे ब्रह्मौर, मान्वा, तुन्दाह आदि स्थानों पर शक्ति के मन्दिर बहुत प्रसिद्ध हैं। ब्रह्मौर तहसील से मिलते स्थान छितराढ़ीं में शिव शक्ति का मन्दिर तो देश-विदेश के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। यहां शिव शक्ति के चमत्कारों के अनेक जीते जागते प्रमाण देखे जा सकते हैं। शिवलिङ्ग और शिव मन्दिर तो इससे ही प्रकट हो जाते हैं कि सम्पूर्ण चम्बा ही शिव भूमि कहलाता है। शिव भूमि पर होने वाला शिव पूजन अपनी एक पृथक विशेषता रखता है जो सांकेतिक रूप में इस प्रकार है।

नुआला

नुआला जिला चम्बा का लोक शब्द है। ऊन वाला इन दो शब्दों का अपभ्रंशित

रूप। क्योंकि नुग्राला में शिव को ऊनार्पण एवं ऊन वाले (मेढे) की बलि का विधान होने के कारण शिव पूजन का नाम भी नुग्राला पड़ा हुग्रा है। एक ग्रन्य विचार धारा के ग्रनुसार 'नौ बाला' का विकृत रूप नुग्राला प्रचलित हो गया है। इस विचार के लोग कहा करते हैं—चार बन्दे (पांवडे गायक) कुटवाल, बुटवाल (पूजन के समय काम करने वाले) चेला शिव रूप में नाचने (कांपने) वाला, जोगी ग्रौर कर्त्ता इन नौ का पूजन में विशेष कृत्य रहने से शिव पूजन नुग्राला कहलाया।

नुग्राला प्रायः रात के समय कभी भी किया जा सकता है। किसी मुहूर्त ग्रादि को विचारने की कोई ग्रावश्यकता नहीं समझी जाती। किसी शुभ संस्कार का मुहूर्त विचारे बिना नुग्राला करके संस्कार कर लेना शुभ माना जाता है, क्योंकि नुग्राला सर्व विघ्नोपशान्ति कारक सर्व-मान्य है। मुंडन संस्कार हो या विवाह, ग्रन्नप्राशन हो या कर्ण बेध नुग्रावा किया जाना ग्राम बात मानी जाती है। शिव से कोई मनौती की जाती है तो नुग्राले की। किसी विघ्न निवारण, विपद विनाशन पर नुग्राला इच्छा पूर्ति पर नुग्राला पुत्र प्राप्ति के लिये मनौती नुग्राला, भावी विघ्न निवारणार्थ मनौती नुग्राला, ग्रच्छी फसल उत्पत्ति के लिये नुग्राला व्यापारिक लाभार्थ मनौती नुग्राला। ग्रभिप्राय यह कि नुग्राला एक ऐसा सर्वमान्य पूजन है जो किसी भी बात पर किसी भी दिन किया जा सकता है।

व्यवस्था

जब भी नुग्राला करना ग्रपेक्षित हो तदर्थ कुछ ग्रावश्यक वस्तुजात एकत्र करना होता है। जैसे नुग्राले पर ग्रामन्त्रित व्यक्तियों के लिये भोज का प्रबन्ध। यदि सब के लिये न किया जा सके तब नौ उपरोक्त व्यक्तियों के लिये तो ग्रनिवार्य ही रहता है। निमन्त्रण को लोक भाषा (बोली) में धाम कहा जाता है। धाम के साथ २ शिव पूजन के लिये साधारणतया धूप, दीप, चन्दन, रोली, ग्रक्षत पुष्पादि के साथ २ पत्र, कलश, शिव पान पात्र, मेढा, दूध, दहीं, मधु (शहद) शक्कर, पंचामृत, मधुपरक, पंचगव्य, सर्वौषिधी, सप्त मृतिका, ऊष्णोदक, शीतलोदक, बिलपत्र, ऊर्णा, यज्ञोपवीत, वस्त्र, कुंकुम, ग्रष्टगन्ध, यक्षकर्दमगन्ध, रोलिकगन्ध, मौक्तिक, विद्रुम, सुवर्ण रजित पुष्पमाला, इतर, पुष्पमाला, नैवेद्य, कपड़ा, (यथा शक्ति) नवग्रहादि पूजन के लिये सुपारियां।

पूजन

नुग्राला में पूजन सम्बन्धी विशेष बात है—सर्व प्रथम गणेश का नहीं बृषभ का पूजन किया जाता है तदनन्तर गणेश का। प्रधान शिव पूजन में ही गौरी, गणेश, वृषभ, कलश, पत्र, उर्ध्वमाला, योगी, नवग्रह, चतुर्वेद, ब्रह्माण्ड, पृथ्वी पूजन भी संक्षेप में किया जाता है। ग्रंजलिबंध शिव के जिस रूप का ध्यान किया जाता है वह है 'नित्यं महेशं रजत गिरि निभं चारु चन्द्रावन्तं रत्न कल्पोज्वलांगं परशु मृग वराभीति हस्तं, प्रसन्नं पद्मासीनं समन्तात् स्तुत ममर गणैर्व्याघ्राकृति वसानं विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं, पंचवस्त्रं त्रिनेत्रं सर्वव्याधि विनाशन, पार्वती संयुक्तं'।

जिस स्थान पर शिव पूजन (नुग्राला) करना होता है गज चौकोर भूमि माप कर उतनी भूमि पर ग्राटे की रेखाग्रों द्वारा बराबर २ चौरासी सिद्धों के सूचक चौरासी खाने बना कर उन पर लगभग एक इंच उंचाई तक ग्राटा बिछा दिया जाता है। ग्राटे से बनाए इस थड़े को मण्डल या घट

कहा जाता है। घट पर चौरासी बड़े बबरू, बीच में शिव प्रतिमा या शिवलिङ्ग स्थापित करके एक ओर थोड़े अन्तर पर चार बन्दे (पांवड़े गायक) घट के साथ ही योगी पुरोहित, कर्त्ता और किनारे पर कुटवाल् बुटवाल्, दूसरे खाली स्थान पर आमन्त्रित महानुभाव मंडल के पास ही एक किनारे पत्र (काली के खप्पर का सूचक तुम्बा) रखा जाता है। मुख्य द्वार के पास (यदि बुलाया गया हो तो) बेंसी (नगाड़ा शहनाई आदि वादक) बिठाए जाते हैं। जिस स्थान पर मण्डल बनाया गया हो उस स्थान से ऊपर छत से तले तक पहुंच सकने वाली फूल की मालाओं को एक बड़े से रिंग के चारों ओर लटका कर उस भाग को ऊपर की ओर करके छत से बान्ध कर निचली ओर मालाओं को इस प्रकार लटकाया जाता है कि शिव प्रतिमा मालाओं के घेरे के मध्य में आ जाए।

इधर शिव पूजन आरम्भ, तो पास ही गृह दिवार के सहारे बैठे बन्दों ने अपने २ वाद्य यन्त्र संभाल लिये। प्रधान बन्दे ने ढोलक, दूसरे ने घड़याल तीसरे ने गम्भीर ध्वनि वाला नगाड़ा चौथे ने तीनों की ध्वनी से मिलता कोई सा वाद्य। सब वाद्यों की मिली हुई ध्वनि– अप्पू स्वामी जी अप्पू शिवजी अप्पू ईंणा हां अप्पू। बहुत धीमी ध्वनि से बन्दे गा उठे—

"गढ़ पर्वत से उतरे सदा शिव
बिच मथरा दे आए।
चरण खड़ाउं टासर धोती
मूंढे मिरगाण पाए ॥

पुछदे पुछांदे आए मेरे स्वामी
कुण घर नन्द मैंहरे दा
जिसा परौली पिप्पल् झुल्ले
से घर नन्द मैंहरे दा ॥

जटा जूट शिर गंग विराजे
गल में शेष नाग लटकाए।
गढ़ पर्वत से उतरे सदा शिव
बिच मथरा दे आए ॥

पुछदे पुछांदे आए मेरे स्वामी
कुण घर नन्द मैंहरे दा।
जिसा परौली हाथी झुलदे
से घर नन्द मैंहरे दा ॥

जांदे ही शिवे नाद बजाई
ले भिछया नन्द राणी आई।
भिछया दा भुखा नहीं मेरी माता
बालके दे दर्शण पाणे ॥" आदि……।

बालक कृष्ण के दर्शनार्थ शिवजी का मथुरा में पहुंचना। मां का बालक दिखाने से संकोच

पुनः बालक का पालने से उठ गले मिलना द्वापर युग का स्मरण करा रहा है। अब मंडल में शिव पूजन के साथ २ पुजापा चढ़ाया जाने लगा इधर एंचली भी बदल गई—

"आटे कूटे तेरा घट भरया (बणाया)
लै शिव अपणा उधार हो।
बड़े बबरुए तेरा घट भरया,
लै शिव अपणा उधार हो। आदि······।

उपरोक्त वृषभ, गणप आदि पूजनों के उपरान्त चेला कम्पाने की प्रस्तुति में मेष बलि के लिये मेढा लाकर कर्त्ता द्वारा शिवार्पण के लिये मेढे के मुंह, कानों, खुरों और पीठ पर पानी डाल कर मेढे को खुला छोड़ यह प्रतीक्षा की जाती है कि कब मेढा कांपता है। जब मेढा अपने ऊपर पड़े पानी को झाड़ने के लिये कांप कर झुणक मारता है तब 'जय शिवजी महाराज' कह कर यह मान लिया जाता है कि शिव ने बलि स्वीकार कर ली है। पुनः बलिदान और चेला कम्पानी वाली एंचली बन्दे गाना आरम्भ कर देते हैं। यदि बुलाए हों तो शहनाई वादक भी वही एंचली शहनाई पर बजाना आरम्भ कर देते हैं। इस समय की एंचली को लौहली कहा जाता है। लौहली के अनुसार ही नगाड़े बजाए जाते हैं। चेले के आगे धूप धुखा कर शिवजी की तरह २ के वर्णनात्मक वाक्यों द्वारा जय जयकार उपस्थित व्यक्ति उंचे स्वर में बोल उठते हैं। जैसे कैलाश पति शिवजी की जय। कैलाश निवासी शिवजी की जय। धूड़ी जटा वाले की जय आदि। उधर लौहली गाई जा रही है—

एंचनी, कैंचनी दो सगी बैहणा,
अपु विचे गला लगी लाणा हो।
छोआ बोखण छोआ माता,
लक बन्हदी नर वारी हो। आदि··।

चीख मार कर कांपता हुआ चेला खड़ा हो जाता है। सब गाजे बाजे बन्द करके लोग चेले की बात सुनने लगते हैं। चेला बिना कुछ बोले दोनों हाथ आगे बढ़ाता है, मंडल में बैठा कोई सा व्यक्ति चार पांच लड़ियों वाला पास रखा लोहे का सांकल चेले के हाथों में दे देता है। चेला सांकल छनका कर कांपता हुआ बोलता है बजो भई' गाजे बाजे पुनः बज उठे। चेला कांपता हुआ सांकल से अपनी पीठ पर स्वयं मार खाता हुआ फिर जोर से बोल पड़ता है -ओए। जा बणा हउं खुशी हा, तेरी सुखण पूरी भुची गो न ? (ऐ भई ! मैं प्रसन्न हूं, तुम्हारी मनौती पूरी हो गई न ?) कर्त्ता स्वीकारोक्ति में जय जयकार करता है)।

इस प्रकार कांपते हुए चेले के वचनों को पुछ कहा जाता है। कई पुछें सुनाने के उपरान्त चेला कांपना बन्द करके बैठ जाता है। लोक धारणा है कि चेला जो कुछ बोलता है शिवजी द्वारा बुलवाया जाता है। अतः शिव वाक्य सब के लिये शिरोधार्य हुआ करते हैं। सब उपस्थित व्यक्ति मण्डल के पास जा कर पैसे चढ़ा कर शिव को धूप ध्यान करते हैं। पुनः भोज और रात भर

पुराण, रामायण की गाथाओं पर अधारित अपनी बोली में गठित एंचली, गीत गाए जाते हैं।

बोल चाल

ब्रह्मौरी निवासी होने के कारण इन की बोली का नाम ब्रह्मौरी (ब्रह्मपुरी) या गडरिया पेशा होने के फलस्वरूप गद्दी पड़ा हुआ है। नितान्त संस्कृत परायण होने के आधार पर कहा जा सकता है कि इन के सुदूर पूर्व के पूर्वज अवश्य संस्कृत बोला करते होंगे। बोली का माधुर्य और बोलने का लहजा सुनते ही बनता है। स वर्ण ह और ष के उच्चारण में इतनी मीठी ध्वनि से बोला जाता है कि व्याकरण के विद्वान् भी इसके आकर्षक वृत में आ जाते हैं। उपहास परायण वाक्य इस प्रकार श्लेषोक्ति प्रस्तुत करते हैं कि सुनने, समझने वाला व्यक्ति चकित रह जाता है। भाषा की बानगी प्रस्तुत करना अनुपयुक्त नहीं होगा।

ब्रह्मौरी	संस्कृत	हिंदी
१. तू इहाँ बैंश	त्वं इह उपविश	तू यहां बैठ
२. तठी (तैंहाँ) गच्छ	तत्र गच्छ	वहां जाओ
३. इहाँ (इठी) आ	इहा गच्छ	यहां आओ
४. सो अजूंह न परोही गाल्हा	सोऽद्यन परश्नो गामिष्यति	वह आज नहीं परशों जाएगा
५. सो कहाँ भोल्ला	सः कुत्र भविष्यति	वह कहां होगा

जब परस्पर उपहास चलता है तब श्लेष उपमा, प्रतीप जैसे अलंकार स्वतः सिद्ध हो जाते हैं। श्लेष की बानगी प्रस्तुत है —

१. 'मेरे कुड़मा साही तकोढ़ी कुण भूणा' (मेरे कुढ़म के समान गुण दोष द्रष्ठा कौन होगा) इस वाक्य में तकोढ़ी शब्द द्व-यर्थक है। द्रष्ठा और कोढ़ी। कोढ़ी अर्थ में वाक्य बनेगा—मेरे कुड़म के समान तो (त) कोढ़ी कौन होगा।

२. 'ओ कुड़मा ! मूं तुच्जो दूरा थउं ताड़ी थु छड़ूरा' (अरे कुड़म ! मैंने तुम्हें दूर से ही देख रखा था) इस वाक्य में भी ताड़ी शब्द श्लिष्ठ है (१) पहचानना (२) बीच में करना।

इनी प्रकार 'तुन्धे प्रतापा रे अग्गे ध्याड़ा कुण भुंदा' (तुम्हारे प्रताप के आगे सूर्य कौन होता है) कितने भोलेपन में उपमान-प्रतापी सूर्य को उपमेय से कम दिखाया गया है। थोड़ी अनुप्रास की झलक भी देखिये—'तू इठी कठी इची रेहुआ' ? (तू यहां कहां आ गया है) ऐसे २ उदाहरण बोली की साहित्यिक समृद्धि को भी प्रकट करने से नहीं रुकते। मुहावरों और लोकोक्तियों का गहन पुट तो इसे और भी समृद्ध बनाए हुए है ; किन्तु खेद है स्थानीय शिक्षित वर्ग इस ओर बहुत कम ध्यान दे रहा है। जहां तक मैं जानता हूं श्री अमर सिंह रणपतिया ही पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने इस बोली के शब्दकोष की रचना करके सराहनीय पग उठाया है।

वेश भूषा

सामाजिक परिवर्तन रोके रुकता कम ही है परन्तु संस्कारों से पोषित प्राचीनता को

समाप्त करना भी तो कठिन है। उसका अस्तित्व, साहित्य, लोक कथाओं, चित्रों और मूर्तियों में निहित मिल ही जाया करता है। कलाकारों की इस धरोहर को लुप्त करना अपने पूर्वजों के अस्तित्व को लुप्त करना ही कहा जा सकता है।

इस क्षेत्र में तो इस फैशन सेवी युग में भी बहुत अधिक लोग विशेषकर गडरिये अपनी उसी पुरानी वेशभूषा में देखे जाते हैं जो सदियों पुरानी रही है। पाओं में पुरानी किसम के मोटे तले उन पर भी नाल चढ़े जूते, नंगी टांगे अथवा ऊनी घुटना पहनना, तगड़ी-अंगोछा, ऊनी चोला, कमर पर काली ऊन से तैयार किया रस्सा नुमा डोरा कसे रहना, डोरे की लपेटों में पेट की ओर चर्म निर्मित बटुआ, दांत और कान कुरेदनियां, चाकू, और एक ओर रुणका (लोहे का विशेष विधि से बनाया टुकड़ा जिसे चक मक से टकरा कर अग्नि-कण उत्पन्न किये जाते हैं) भेड़, बकरियों को चराने जाते समय डोरे में दरान्त खोंस लेना, बाएं हाथ में छोटा सा हुक्का दाएं हाथ में सांधा (एक ओर दो शाखी सोठा) शिर पर ऊपर को उठी ऊनी टोपी जिस पर मन पसन्द के रंग का रुमाल बान्धना, कुछ टोपी पर विशेष रंग के परों की कलगी लगाना भी पसन्द करते हैं।

स्त्रियां पांओं में पनही, शरीर पर कुर्ता, कुर्ते के ऊपर कमर तक वास्कट की तरह और नीचे को टकने तक घेरेदार चोला जो प्रायः १० से १६ मीटर कपड़े से तैयार किया जाता है, पहना जाता है। कमर पर उपरोक्त डोरा। इस चोले को लोक बोली में लुआंचड़ी कहा जाता में। सदियों में लुआंचड़ी के बदले ऊनी लुआंचड़ी (चोलु) पहना जाता है। अधिकतर चोलु के घेरे में टांगे नंगी ही रखी जाती हैं अथवा चूड़ीदार सुत्थण पहनी जाती है। गले में तरह २ की मालाएं, नोक में विशेष प्रकार की फुल्ली या रिंग, कानों में चांदी की बालियां, कलाई पर चांदी की बड़ी २ चूड़ियां, आधुनिक बंगा भी, माथे पर चांदी या सोने का मान टिक्का, शिर (बाल) विशेष प्रकार से गूंथते समय चौंक (कीप की तरह चांदी या सोने का) कान के पिछले भाग पर फुल्लु डालने की प्रथा है। शिर पर दुपट्टा।

घरेलु आचरण

परिवार का बड़ा व्यक्ति नेगी या घरमो ही कहलाता है। नेगी के आदेश का सब पालन करते हैं। वही परिवार की सम्पूर्ण व्यवस्था का ध्यान रखता है। उसके सामने छोटे भाईयों और बेटों की पत्नियां घुंघट काढ़ती हैं, खाट पर नहीं बैठती। यहां तक कि आसन पर भी नहीं बैठतीं। पुत्र बहुएं सास की आज्ञाकारिणी रहती हैं। परिवार के अन्य दम्पति नेगी के सामने परस्पर बातें करने से शर्माया करते हैं। पितृ देवो भव, की भावना से कार्य चलता है।

रहन सहन

समय की दौड़ में भाग न लेने से व्यक्ति भले ही सामाजिक दृष्टि में महत्त्व खोने लगता है किन्तु निजत्व का निर्मूलन भी तो बुद्धिमता नहीं कहलाती क्योंकि जिस का निजी कुछ भी न रहे वह मृत प्रायः हो जाया करता है। वही वास्तव में जीवित है जिस की अपनी भाषा, अपना साहित्य, अपने आचार विचार, रहन-सहन, खान-पान, धर्म, कर्मादि हुआ करता है। सम्भवतः इसी आधार पर आज भी सुदूर पूर्व युग का रहन-सहन इन्होंने धरोहर के रूप में सम्भाल कर रखा हुआ है।

ऐसी भी बात नहीं है कि यहां के निवासी सामयिक दृष्टि से बिल्कुल पिछड़े बैठे हैं। पीढ़ी के कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं जो सामयिक रंग में कन्धे से कन्धा मिलाए चल रहे हैं। तदपि—

यहां की रहन सहन स्थिति आर्य जाति की आरम्भिक झलक आज भी प्रस्तुत करती हुई दिखाई देती है। सब परिवार रूप में इकट्ठे रहा करते हैं। एक ही मुखिया की संरक्षता में सारा परिवार कार्य करता और उसी की आज्ञा का सब पालन किया करते हैं। जितने भी भाईयों का परिवार हो वह पिता की आज्ञा का पालन, एक ही परिवार रूप में रहना अपनी मर्यादा समझता है। स्त्रियां घर में ऊन काता करती हैं और पुरुष काते सूत को व्यवस्थित करके कम्बल आदि तैयार किया करते। स्त्री-पुरुष मिलकर कृषि कार्य में भी साथ-२ एक दूसरे के सहयोगी बने रहते हैं। बहुओं को सास की आज्ञा शिरोधार्य रहती है। बड़ों से पर्दा करने की प्रथा तो प्रचलित है ही, साथ २ परिवार में किसी की उदण्डता बिल्कुल असह्य मानी जाती है। परिवार में पारिवारिक अनुशासन का कड़ाई से पालन किया जाता है। परिवार की बड़ी स्त्री या बारी २ सब स्त्रियों को भोजन बनाना होता है। जब कोई विशेष भोजन बनाना होता है तब परोसने का काम नेगिन के जिम्मे रहता है। वह सब को इकट्ठे बिठा कर बराबर २ यथोचित विधि से भोजन परोसा करती है। बाप को कक या चच, माँ को इन्जी, बहन को दीदी, भाई को भाउ बोलते बड़े ही स्नेहिल लगा करते हैं।

जो लोग सर्दी के दिनों जान्वर नहीं जाते वे इन दिनों के लिये सम्पूर्ण आवश्यक वस्तुजात पूरे समय के लिये घर में एकत्र कर लेते हैं। बर्फीले दिनों में आग के पास बैठ कर घर के बड़े बूढ़े छोटों को अपने अनुभव, दन्त कथाएं, लोक कथाएं, पौराणिक गाथाएं सुनाते, पहेलियां पूछते तथा कोई छोटी मोटी शर्त पर पहेलियों के उत्तर बताते हैं।

खान-पान

किसी भी स्थान का खान-पान वहां के उत्पादन पर ही तो निर्भर करता है। इसलिये तदनुसार मक्की की रोटी, माह की दाल, चणें एवं कोण का भात, यदि सुलभ हो सके तो सब तरह के चावल, कढ़ी, खट्टा, राजमाह, स्वनिर्मित बड़ियां, सामयिक साग सब्जियां, मांस सर्व साधारण खान-पान होता है। बड़े बबरू, थपलु, चिल्ले भी बड़े शौक से खाए जाते हैं। गर्मियों में खमीरी, रोटी (भट्रू) फुलका आदि चलता है। सर्दियों में बिच्छु बूटी का साग, कोदा या मक्की की रोटी बहुत पसन्द की जाती हैं। चवरू, एंके, चरौली, लुच्ची (पूड़ी) पूड़े विशेष पकवान माने जाते हैं।

विवाह आदि में दही (छाछ) खटाई वाला एवं शोरवा मीट, दाल, मक्की के आटे के लड्डू, भात पंक्तियों में बैठ कर बड़े चाव से खाते हैं। पीने वाले एक विशेष प्रकार की शराब जिसे सुर कहा जाता है खूब पिया करते हैं। सुर कोदो से तैयार किया करते हैं। सरकार की ओर से केवल विशेष संस्कारों पर स्वीकृति मिल जाती है। सुर पान मंडली रूप में ही प्रायः चलता है। मण्डली में बैसे व्यक्ति पीने से इन्कार नहीं कर सकता। यदि कोई अधिक पीना नहीं चाहे तो थोड़ा सा भाग तो आवश्य लेना पड़ता है। जो कुछ पीने के उपरान्त नहीं पीना चाहे उसे अपना प्याला

उल्टा रखना होता है। जो ऐसा नहीं करता है उसे दण्ड के रूप में पूरी मण्डली को अपने व्यय से सुर पिलानी पड़ती है। शराब भी पी जाती है। सफर में गुड़-सत्तु का प्रयोग होता है।

लालन-पालन

प्रायः प्रत्येक माता-पिता और अभिभावक की तरह ये लोग भी अपने बच्चों का लालन पालन सब तरह की सुविधाओं द्वारा करना चाहते हैं, परन्तु परिस्थितियां प्रत्येक की अपनी २ होने के फलस्वरूप उनके अनुकूल सांचे में बच्चों को ढालना विवशता ही कही जा सकती है। क्योंकि ब्रह्मौरी भू भाग समुद्र तल से साढ़े छः हजार से १२ हजार फुट से भी ऊंचा होने के साथ २ अनेक दुर्गमताओं असुविधाओं और कठिनाईयों से भरा पड़ा है। इसलिये तदनुसार लालन पालन, रहन सहन की व्यवस्था अपनाना, तद्गत समस्याओं से लड़ना सिखाना आवश्यक ही तो है। इसी कारण प्राकृतिक कठिनाइयों से जूझना बचपन से ही सिखाया जाता है। बच्चों की सुकोमलता को धीरे २ असुविधाओं की सहिष्णुता में बदला जाता है। खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा सभी कुछ तो स्थिति के आधार पर अपनाना पड़ता है। छोटे २ बच्चों को ही पीठ पर भार उठा ले चलना, कठिन साध्य कृषि का अभ्यास, भेड़ बकरियों का चराना, अपनी २ भेड़ बकरियों की पहचान, ऊन मुंडाई खनाई, जोराई, रूखे-सूखे पर सन्तुष्टि शैशव से ही सब कुछ सिखाया जाता है। अतिथि सेवा, भ्रातृ-भाव, आज्ञाकारिता, नम्रता आदि तो पूर्वजों के व्यवहार से ही पनपते जाते हैं। प्रत्येक दैनिक आवश्यक कार्यों में बच्चों को साथ २ ले चलने से अनायास प्रशिक्षण देना यहां के निवासियों का का अपना ही ढंग है। अपने पूर्वजों के साथ २ कार्य करते रहने से अपने व्यवसाय में सिद्धहस्त हो जाना स्वभाविक बात बनी हुई है। छल कपट से दूर रहने के कारण निश्छलता के प्रत्यक्ष दर्शन किये जा सकते हैं। कुछ लोग इन्हें भोन्दु, बुद्धु, पिछड़ु, लकीर के फकीर, अन्ध विश्वासी कुछ भी कहें किन्तु जिस विकसित रूप में छल, कपट, धोखा, ठगी, लूटमार, चोरी, डाका घर बनाए हों उस से तो कहीं ये भोन्दु, बुद्धु ही भले हैं। मैं यह भी नहीं कहता कि यहां छल, कपट या चोरी होती ही नहीं किन्तु दूसरे विकसित स्थानों की समानता में नहीं के बराबर अवश्य कहा जा सकता है।

रीति रिवाज और संस्कार

इन बातों की थोड़ी बहुत भिन्नता का कारण है तो वह है भौगोलिक स्थिति, इस पर भी अनपढ़ता का रंग चढ़ा रहना दूसरों की दृष्टि में 'लकीर के फकीर' माना जाता है। अब सरकार के भरसक प्रयत्नों द्वारा बहुत सी भौगोलिक असुविधाएं दूर की जा चुकी है, की जा रही हैं एवं शिक्षा सुविधा प्रदान की गई है तदपि वर्षों ही नहीं सदियों से चले आ रहे आचार विचार, रीति रिवाज फूंक मारने से तो बदलेंगे या सुधरेंगे नहीं। सब तरह के रीति रिवाज बदलने योग्य ही हैं ऐसी बात भी नहीं परन्तु भाटी (त्योड़ी) जैसी रीति जहां असंगत सी प्रतीत होती है वहां दहेज बन्धन का न होना अनुकरणीय भी है। ऐसी परम्पराएं भी अस्वीकारी नहीं जा सकती जो लोक शक्ति की पहुंच, समर्थासमर्थ को देखते हुए मध्य मार्ग पर चल रही है। सम्भवतः इसी लिये नामकरण, सूत्रे, अन्न प्राशन, कर्णवेध, मुंडन, यज्ञोपवीत आदि संस्कार नितान्त आडम्बर विहीन, व्यय रहित, सर्व शक्ति गम्य रीति से सम्पन्न कर लिये जाते हैं। किसी पर्व दिवस पर नवरात्र, शुभ मुहूर्त और शिव का नाम लेकर ही सर्व सिद्धि मान ली जाती है। अपनी शक्ति से अग... ...नाना कोई पसन्द

भी नहीं करता। यज्ञोपवीत विवाह के समय या मनिमहेशन्होंण के दिन किसी ब्राह्मण के हाथों शिव का नाम लेकर धारण कर लिया जाता है। मुंडन भी नवरात्रों में अथवा उत्तरायण के दिनों में जब कभी मनपसन्द के व्यक्ति को बुलाकर कर दिया जाता है।

मंगनी

मंगनी की बात तो निराले ही ढंग की है। भले ही बच्चे अभी छोटे ही हों, शैशव में चल रहे हों अभिभावक जब कभी किसी सुर मंडली में बैठे हों वहीं बातों बातों में परस्पर आदान प्रदान कर लिया करते हैं। आदान प्रदान का आशय है बाटापरायण की मंगनी (लड़के जिसके बेटे को दी जाती उस की बेटी अपने लड़के के लिये मांग ली जाती है। अभाव में किसी अन्य की बेटी दिलवाने की प्रतिज्ञा कर ली जाती) कभी कभार तो दोनों ओर से अजन्में बच्चों का सम्बन्ध सम्भावना पर ही कर लिया जाता। परन्तु अब यह प्रथा प्रायः लुप्त होती जा रही है।

विवाह

विवाह बिना किसी आडम्बर के साधारण रीति से कर लिया जाता है, केवल थोड़ी भिन्नता है तो यह कि विवाह करके लड़की को पीहर में छोड़ आते, विशेषकर बाल विवाह जब हो पुनः लड़की के जवान होने पर किसी शुभ दिन पर कुछ व्यवियों को साथ ले जाकर लड़की घर लाई जाती है उसी समय इच्छानुसार यथाशक्ति दहेज दिया जाता है। दहेज सम्बन्धी किसी प्रकार का कोई बन्धन नहीं रहता। लड़की को मुख्यता दी जाती है, दहेज नितान्त गौण बात रहती है! लड़की को बुलाना सदणारी कहा जाता है। सदणारी के दिन भी भोज अवश्य दिया जाया करता। पुन-विवाह के भी उदाहरण मिलते हैं। वर्तमान समय प्रेम विवाह के प्रमाण भी प्रस्तुत करने लगा है।

उत्सव त्यौहार

साकार ईश्वर की उपासना, देवी देवताओ की वर्तमानता पर अगाध श्रद्धा और दृढ़ विश्वास होने के कारण बहुत से उत्सव और त्यौहार उन्हीं पर आधारित दिनों में हुआ करते हैं एवं मेलों का आयोजन होता है। जैसे मनीमहेश पर्व दिनों में ब्रह्मौर आदि अनेक स्थानों पर जात्राओं का लगना। दीपावली पर दीप दान, होली के दिन होलिका दहन, भाई दूज आदि ऐसे त्यौहार हैं जो पौराणिक मान्यताओं के आधार पर मनाए जाते हैं। उत्सवों पर गाये जाने वाले लोकगीत पौराणिक गाथाओं पर निर्भर पाए जाते हैं। एक ऐसा वर्ग भी सक्रिय पाया जाता है जो रामायण महाभारत तथा पौराणिक कथाओं को लोक बोली में ग्रथ कर घर २ गा कर सुनाता हुआ आजी-विकार्जन करता है। ऐसी गायाएं मुसाधे नाम से जानी जाती हैं। मुसाधे कब कैसे, कौन, कया २ होते हैं यह एक पृथक विषय है। अतः इस पर कभी फिर लिखा जाएगा। लोढ़ीं, वसोआ (वैशाखी) सैरी, विशेष त्यौहार माने जाते हैं। इन दिनों सगे सम्बन्धी, मित्र, बेटियों को बुला कर समय अनुसार बबरू, खिचड़ी, पिन्दड़ी (कोदो के आटे से बनाई पिन्नियां) खिलाई जाती हैं। विजय दशमी, शिवरात्रो, जन्माष्टमी, पूर्णमासी के दिन व्रत, पूजन, भोजन, भजन का विधान है। चैत की संक्रान्ति से विशाखी तक स्त्रियां धुरेई (धुरेही) गाया करती हैं। प्रत्येक दिन एक बार तो धुरेई गायन के साथ साथ नृत्य नारियां अवश्य किया करती हैं। क्योंकि विशाखी पर मायके

वाले अपनी बेटियों को अवश्य बुलाते और बड़े लाड़-प्यार तथा मान से खिलाते पिलाते हैं। अतः स्त्रियां चैत माह में बड़े उत्साह में भरी रहती हैं। घुरेइयां गा २ कर प्रसन्नता मनाती हैं।

घुरेई

घुरेई हिमाचल के ब्रह्मौर क्षेत्र का ही नहीं जिला चम्बा का लोक शब्द है। लोक भाषा के अध्ययन से ज्ञात होता है कि हिन्दी के सम्बन्ध कारक की जो का, की, के रा, री, रे विभक्तियां है वे ही इस बोली में भी प्रयुक्त हुआ करती हैं। ऐसा भी पाया जाता है कि कभी २ रा, री, रे—दा, दी, दे में भी बदल जाती हैं। इसी आधार पर घुरेई का गा मूल शब्द घरेरी (घर की) माना जा सकता है। समयोपरान्त यही शब्द घुरेई कहलाने लगा है। दूसरे मत के अनुसार ऐसी बातचीत जिसकी दूसरों तक केवल घुर २ की ध्वनि सुनाई देती है घुरेई कहा जाने लगा। एक अन्य मत घरोरे (घर के मन मुटाव वाली बातें) से घुरेई की निष्पत्ति बताता है। कुछ भी हो घर की बातों पर आधारित रहना तो तीनों मत स्वीकारा करते हैं। हम जानते हैं-बहुत बार घर में किसी कारण वश एक दूसरे के प्रति रोष, मन मुटाव, उपालम्भ और आरोप, प्रत्यारोप उत्पन्न हो जाया करते हैं जिन के फल स्वरूप अपने मन को हलका करने के लिये किसी अन्तरंग व्यक्ति से बहुत धीरे-२ जो बातें की जाती हैं; जिन की दूसरे सुनने वाले केवल घुर-२ की ध्वनि ही सुन पाते हैं घुरेई शब्द की पृष्ठ भूमिका हैं। यह भी तो देखा जाता है कि जब कभी कोई पास नहीं होता तब व्यक्ति स्वयं-२ से बातें करने लगता है। गुनगुनाने लगता है - पुनः एक ऐसा समय आ जाता है जब वही गुनगुनाहट गति रूप में प्रस्फुरित हो उठती है।

सम्भवतः कोई ऐसी नारी होगी जिसका ससुराल में कोइ अन्तरंग बन नहीं पाया होगा, घनिष्ठता का अभाव और घरेलु रोषाग्नि जलाने लगी होगी, "वियोगी होगा पहला कवि" की नाई गुनगुनाहट गीत बन गया होगा, जिसे आज हम घुरेई नाम से सुनते ही उस स्थिति का अनुभव करने लगते हैं जिस में उस नारी की विवशता, तड़फन और रोष भरी ममता छिपी बैठी है। घुरेई गीत जो पहले घरेलु रोष और उपालम्भ परायण ही हुआ करते थे पुनः विविध विषयों को अपनाते हुए वहु रूपी बन चुके हैं। अब चरितात्मक, घटनात्मक, ऐतिहासिक, प्रशंसात्मक आदि अनेक रूपों में गाये हैं। घर की बातों पर आधारित होने से घुरेई शब्द स्त्रीलिङ्ग वाची माना गया है। विषयान्तर भय से घुरेई के कुछ ही उदाहरण देना पर्याप्य समझता हूं। अपने पिता जी को उलाहना देती हुई बेटी—

> होरं ता धियां बापुए नेड़े-२ दित्तियां।
> हउं ता दित्ति बो बापुए नदिए पार॥
> होरनां जो दित्तियां बापुए तिल्लेदार जुत्तियां।
> मिंजो दितियां बो बापुए सादियां हो॥ आदि...।

कितना रोष और उपालम्भ भरा है इन पक्तियों में। पिता ने दूसरी बेटियों को तो पास ही दिया है परन्तु मुझे नदियों के पार दिया गया है। औरों को तो तिल्ले

दार जुत्तियां दी गई हैं पर मुझे पिता ने सादी जूती दी हैं।

एक दूसरी स्त्री बसोआ (विशाखी) समीप आ जाने पर भी मायके से किसी के बुलाने के लिए न आने पर......चुप नहीं रह सकी।

विस्सु ता विस्सु भाइयो ! आई गेया,
भाउ सादा नी आया हो।

होरनां दे भाउ लेई सद्दी गे।
मेरा सादा भाउ नी आया हो।

पिदड़ी ता पिदड़ी भाउआ अप्पु खाए।
पिदड़ी दे फट्ठे देई भेजें हो ॥ आदि...।

मायके जाने की इच्छा लिए बैठी स्त्री अपने भाई को न आया जान कर विह्वल हो उठी बोली......

ए भाइयो ! विशाखी तो आ गई हैं परन्तु बुलाने वाला भाई तो आया ही नहीं। औरों को तो उनके भाई बुला कर ले गए हैं परन्तु मुझे बुलाने वाला भाई तो आया ही नहीं। अतः उलाहने भरे शब्दों में कहती है – पिदड़ी (कोदो के आटे से विशेष विधि द्वारा बनाई गई पिन्नियां जिन को इन दिनों में खाने से पैतृक प्रकोप नहीं हुआ करता है) तो स्वयं खा लेना पिदड़ी वाले पत्ते ही मुझे भेज देना।

मनो विनोद

साधारणतया प्राकृतिक दृष्य ही इतने मनोहारी बने रहते हैं कि उनके द्वारा ही पर्याप्त मनोविनोद हो जाया करता है। अपनी भेड़ बकरियों के साथ ऊंचे २ टीलों, डूंघे २ नालों, पर्वत की ढलानों पर बैठ कर मुरली बजाना, छकड़ी-तास खेलना, नृत्य, गीत आदि मनोविनोद के सुलभ साधन हैं।

सहकार

सुख दुःख में, काम-काज में एक दूसरे का हाथ बटाना, जीवन-मरण सम्बन्धी कार्यों में परस्पर यथासम्भव शारीरिक, आर्थिक सहयोग देना एक प्रकार की परम्परा बनी हुई है। विवाहादि संस्कारों में कहीं दूर से वस्तुजात लाने, घर बनाए जाने पर दूर से भारी घरेलु लकड़ियां आदि लाना, ऊर्ध्व क्रियाओं में सब की ओर से थोड़ी २ आर्थिक सहायता दे कर कार्य निभाना ऐसे काम हैं जो सहकारिता की जीती जागती तस्वीर प्रस्तुत करते हैं।

ऊर्ध्व क्रिया

यदि किसी का घर पर ही निधन हो जाता है तब दाह क्रिया के समय मृत व्यक्ति पर लकड़ी डालना सामाजिक कृत्य के साथ २ धर्म भी माना जाता है। दाह संस्कार करके गृहस्थी घर के एक भाग में कम्बल बिछा कर बैठा करता है। इसी स्थान पर सम्वेदना प्रकट करने वाले आने

और कुछ आर्थिक कुछ अन्न रूप में सहायता देकर आया जाया करते हैं। यदि निधन जान्धर जाते या किसी अन्य यात्रा के समय हो जाता है तब परिवार का वह व्यक्ति जो दाह संस्कार करता है कोई ऐसा कम्बल या वस्त्र धारण किये रहता है जो भूमि को छूता रहे, जिसका अभिप्राय कम्बल को भूमि पर बिछा रहना होता है, यात्रा पूरी भी की जाती हैं तथा कम्बल भी बिछा प्रकट होता है - दस दिन पूरे हो जाने पर कम्बल उठाकर माटी (त्थौड़ी) (मृत व्यक्ति के वस्त्रादि, मेढा या बकरा काट कर, खाद्य पदार्थ बान्ध कर देना) की जाती है। माटी पुरोहित अथवा मानजे को दी जाया करती है। यही ऊर्ध्व क्रिया का अंतिम कार्य होता है।

गृह

समयानुसार, यथोलब्ध साधनों द्वारा गृह निर्माण आधुनिक ढंग से भी होता जा रहा है परन्तु सर्व साधारण की जहां तक बात है गृह निर्माण में लकड़ी का अधिक प्रयोग किया जाता है। लकड़ी के दो ढाई इंच मोटे, दो फुट लम्बे फट्टे काट कर काष्ट कीलों से जोड़ कर स्तूप जैसों के आधार पर घर खड़ा कर लिया जाता है। इन स्तूप जैसों को कौले या ठौले कहा जाता हैं। कौलों को बाद में या साथ २ पत्थरों से चिना जाता और शेष भाग पर दीवार दी जाती है। घर दुमंजिले, तिमंजिले बनाए जाते। यदि स्लेट न जुटाए जाएं तब लकड़ी के फट्टों से सर्वोपरि भाग ढलान रख कर ढांपा जाता है। लकड़ी के फट्टों को फाट्टु एवं सर्वोपरि भाग को मोड़ कहा जाता है। बरामदा-बरांडा, निचला बरामदा पसारी, पसारी के अन्दर बांन कहलाते हैं। कमरे को ओबर कहा जाता। पशुशाला को ओवरा, गुवाड़ या गोहरण आदि कहा जाता। घास रखने वाले स्थान को भुआल या घसियाल। किचन को रुसयाला, रसौला कहते हैं। गोबर को गोबर, गोमुत्र को गियूंतर या गूंत्र बोलते हैं।

समय आ गया जान्धर का

जैसे ही कार्तिक माह आया मन उदासी से भरने लगा। इधर उधर सर्दी के आसार दिखाने लग पड़े। जान्धर का आकर्षण बलवान हो उठा। पुनः जो स्थिति सानने आती है पद्य रूप में प्रस्तुत है—

जान्धर जाणा जीणा

लगी पेई भुलणा ठंठी ठंठी लुरी,
है घूमी फिरी काती चली आया।
देहा जो बढदी पैंनी जिहां छुरी,
धारा कंधारा बदलु है छाया।
पले पले भुणकु,
सभणी जो लगया ईणा—जांधर जाणा जीणा।१।

रित सैरे दी बीती चली पेई।
धूरी धारा पेइयां बो मितरा।
भुलदी हिउं सीणी आई गेई,

अबे कसी लै अपणे तु ं त्रिकड़ा ।
तौले त्यारी कर
धारा लगया सीणा—जांधर जाणा जीणा ।२।

अम्बर गरजे गैहरी गणीरों,
जोता उदासी लगी छाणा ।
दिन आई गे समझो बर्फीणें,
डंडा डेरा उठाई लेई जाणा ।
लाई खिचताण,
है मसें मसें पुजीणा —जांधर जाणा जीणा ।३।

लटा फटा रखणा बटोली,
चादर पट्टु दी लाणी है त्यौड़ी ।
बिहाली उपराल्हा छोकरु बी लैणा,
सोगु उरणु खौखा पाई थैणा ।
हंढी पूणा जाणा,
हाय मेरेया पटीणा—जांधर जाणा जीणा ।४।

डंगर पैंहरु लैणे कठेरी,
बाट्टु तसलु लूंढु जे कुसेरी ।
बन्ही अंगडा, है पिट्ठी फसाणी ।
अग्गे माल, पिच्चे मुंझयाणी ।
लेई हत्था सोठा,
लाणा छिकरणु रीणा—जांधर जाणा जीणा ।५।

नित्ते कुनी घर घर वारी,
घर घरोटणु छड्डीं चली जाणा ।
जांधरे दी करणी बो तयारी,
घट घरवारी सुट्टी घरे जाणा ।
खाणा कुनी लाई,
रूमे २ चोला नौग्रां सीणा—जांधर जाणा जीणा ।६।

पिट्ठी पर छोकरू भुखाया,
बेही कुदकी करणा है बसां ।
कछिये बी मूंढा वड्डी खाया,
दुध चिच्चु दा चलदे किरहां पियां ।
एह दाही दी थ्रीड़ा,
पहाड़ेरा कठण बसीणा—जांधर जाणा जीणा ।७।

कलाशे दे रूपे पट्टी दी है टोपी,
निलगरी कलगी हथा सजे सोठी।
मोटी २ पिल्ली जान्छु वाह वाह,
नंगीया या ढकी, नी जंघे दी पर वाह।
दिखी कुनी नी,
वड़ी खुशिये मस्तीणा—जांवर जाणा जीणा।८।

चिट्टा चोला लक्का डोरा है काला,
लगदा है छैल मेरा घर वाला।
हिन नाली जुट्टे मारदे कड़ाके,
दिखा लोको मेरे नेगी दे लपाके।
मैं किय्हांनी,
होई मस्त धुणकीणा—जांवर जाणा जीणा।९।

घूम फिर कर कार्तिक माह आ गया है। ठंडी वायु बहने लग पड़ी। शरीर को तीखी छुरी की तरह काट रही है। ऊंचे २ पर्वतों पर बादल छाने लगे हैं। अ : अब शरीर कांपने लगता है। सब कांपने लगे हैं। इस लिए कम सर्दी वाले स्थानों में जीने के लिए जाना है। सैर की ऋतु बीत चली है। भाई साहब, पहाड़ों पर बादल जैसा धुंआ छाने लगा है। बर्फीली पवनें बहने लगी है अतः अब अपनी कमर कस लो। शीघ्र तैयारी करो क्योंकि पहाड़ों पर बर्फ पड़ने लग पड़ी है। कम सर्दी वाले स्थानों में जीने के लिये जाना है।

अब बादल गहरी गर्जन करने लग पड़ा है, पर्वतों पर उदासी छाने लगी है। समझ लो अब बर्फ वाले दिन आ ही गए डंडा डेरा उठा लेना होगा। बड़ी खींचातानी और कठिनता से पहुंचना होगा। क्योंकि कम सर्दी वाले स्थानों में जीने के लिये जाना है। गृह वस्तुजात बटोर कर रखना है और कम्बल, चादरों की त्यौड़ी (वस्तुएं बांध कर पीठ पर लादने योग्य भार बनाना) लगानी है, उसके ऊपर बालक को भी बिठाना है तथा गोदी में दुष्ट मेमना (भेड़ का बच्चा) भी डालना होगा। हाय मेरा रोना—चलना भी पैदल पड़ेगा। कम सर्दी वाले स्थानों में जीने के लिये जाना है।

ढोर, भेड़, बकरियां इकट्ठे कर लेने हैं, बाटु तसलु, लुढु जो कुछ भी किसी का है त्रंगड़ी (रस्सी जाल) है बांध पीठ पर फंसाना है। आगे मवेशी और पीछे २ घर वाली चलेगी। दोनों हाथों में सोठी लिये पीठ पर टेढ़ा सा बोझ उठाए चलेंगे। क्योंकि कम सर्दी वाले स्थानों में जीने के लिये जाना है।

गृहस्थ की सब वस्तुएं कौन ले जा सकता है। छोटे, बड़े घर छोड़ कर चले जाना होगा। जाने की तैयारी करनी होगी। सब गृहस्थी वस्तु वृन्द घर में ही छोड़ जाना होगा (यह संसार की अनित्यता की ओर भी संकेत है) गृह सामग्री कौन खा लेगा। अच्छी सिलाई कराके नया चोला भी सिलाना है। क्योंकि जान्धर जीने के लिये जाना है। सफ़र में—पीठ पर बालक को

भूख लगी है, कहीं बैठ कर आराम करना है। काछी (पीठ पर उठाए बोझ वाली रस्सी जो कन्धों से कसी रहती है) ने कन्धा काटना शुरु किया है। चलते हुए स्तन पान कैसे कराउं पर क्या करूं वात्सल्य खींच जो है। पर्वतीय जीवन कठिन जो है। जान्धर जीने के लिये जाना है ही। कैलाश की तरह (ऊपर को उठी) पट्टी (ऊनी) की टोपी है, उस पर मनाल के परों की कलगी, हाथ में सोठी, मोटी २ पिंडुलियां, सुन्दर २ जानु, नंगी हों या ढकी टांगों की परवाह नहीं है, जिन्हें देखकर कौन है जो प्रसन्नता में मस्त न हो जाए। जांधर जीने के लिये जाना है।

सफेद चोला, काला डोरा (कमर पर बन्धा हुआ ऊनी रस्सा) बान्धा हुआ है। मेरा घर वाला कितना सुन्दर लग रहा है। नाल चढ़े जूते कड़ाके मार रहे हैं। लोगो ! मेरे पति के ठाठ तो देखो ; मैं कैसे न मस्त हो कर उछलने लगूं। जांधर जीने के लिये जाना है।

पहाड़ी लोक गीत एवं नृत्य

ओम प्रकाश शर्मा

हिमाचल प्रदेश लोक गाथाओं, लोक गीतों तथा नृत्य के लिए देश भर में विख्यात है सौभाग्य से पहाड़ी लेखकों, कवियों व भाषा तथा सांस्कृतिक प्रेमियों ने इस रहस्य को लेखनीवद्ध करके न केवल भारत के कोने-२ में पहुंचा दिया बल्कि विदेशों में भी पहाड़ी भाषा कला तथा संस्कृति का ज्ञान उपलब्ध कर दिया है। पहाड़ी लोक साहित्य तथा नृत्य पर परागत एवं समृद्ध है। लोक भाषा तथा गाथाओं से साहित्य का विकास होता है। आधुनिक साहित्य एवं संगीत तथा नृत्य लोक साहित्य तथा नृत्य के सुलझे हुए उदाहरण है और इनमें पुरतत्व की झलक कई पहलुओं में दर्शित होती है।

पहाड़ी लोक गीत एवं नृत्य लोगों की सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक अवस्था का चित्र चित्रण करते है। इससे न केवल चिरकाल से चली आ रही परम्पराओं का विवरण मिलता है बल्कि प्रदेश के विभिन्न स्थानों के जन जीवन की विविधता का ज्ञान भी होता है।

पहाड़ी लोक गीत पहाड़ों में रहने वाले लोगों के जीवन से सम्बन्धित है। यदि कुल्लु का लोक गीत है तो वह वहां की सामाजिक अवस्था से ओत-प्रोत है। सिरमौरी गीत उस घाटी के जन जीवन को दर्शाता है। इसी प्रकार कांगड़ा के लोक गीत कांगड़ा घाटी की जन जाति के कामधन्धों, पर्वों, उत्सवों, विवाह, नदियों व बृक्षों से सम्बन्धित होते हैं। कुल्लु का दशहरा अक्तूबर के तीसरे सप्ताह में मनाया जाने वाला देश प्रदेश में माना हुआ लोक मेला त्योहार है। इस पर्व पर लोग पुरुष, स्त्रियां अपनी प्राचीन वेशभूषा में हार श्रृंगार किए ऊनी चोला और डोरा डाले कुल्लु मैदान में पहुंचते है। कई प्रकार के गायन व नृत्य करते हुए दस दिवसीय मेला या त्योहार खुशी-खुशी से नाच नाच कर स्वयं व दर्शकों को आनन्द विभोर करते हैं। इसी प्रकार के मेले प्रदेश के दूसरे शहरों में बड़ी धूम-धाम से मनाये जाते है। जिला मण्डी में रिवालसर के स्थान पर १४-१५ अप्रैल को यह मेला इस स्थान की लोक गाथाओं, गीतों एवं लोक नृत्य तथा सामाजिक स्तर को दर्शाता है। इसी ही दिन कांगड़ा जिले में कलेश्वर के स्थान पर तथा हमीरपुर जिला में विलि कलेश्वर के स्थान पर बहुत बड़ा संगम होता है लोग विभिन्न वेश भूषा में गाते, बजाते और नाचते इन तीर्थ स्थानों पर पहुंचते है और स्नान करते हैं। लड़कियां "रलियां" ले जाकर दरिया में स्नान कराती है। रास्ते में गाती जाती है जैसे किसी के घर विवाह रचा जा रहा हो, बिलासपुर में नैना देवी का मेला १२-१३ अप्रैल और १४-१५ अगस्त और ५ अक्तूबर को मनाया जाता है जिसमें लोग बिलासपुर, मण्डी, कांगड़ा, हमीरपुर, ऊना व पंजाब से यात्रा में आते हैं और देवी के भजन गाते, धार्मिक कीर्तन करते इन उत्सवों को सुसज्जित करते हैं।

"नायना देविये रखी लैणी भगतां दी लाज"

मेला मारकण्डा, बिलासपुर जिला में १३ से १६ अप्रैल तक मनाया जाता है इस मेले में कई लोक गीत गाए जाते हैं :—

मेले दी जिन्दगाणी ओ मेले दी जिंदगाणी ओ
मारकण्डे कने मेले जो चलणा मेरे हाणी ओ
हंडोले झूटणे कने-कने कने
कने गंगी गाणी ओ
मारकण्डा दे मेले जो चलणा मेरे हाणी ओ।

इन्हीं दिनों बैशाख महीने में प्रदेश के भिन्न-२ भागों में विशु मेला मनाया जाता है। जिला कांगड़ा, हमीरपुर, ऊना में दुर्गा अष्टमी का पर्व बैशाख प्रविष्टे ६ और ७ को मनाया जाता है। लोग व्रत रखते हैं और सुबह शाम भजन कीर्तन करते हैं मण्डलियां व संगते बुलाते हैं, देवियां व स्त्रियां व्रत रखती है और किसी निकट के दरिया में स्नान करती है आती जाती गाती जाती है मानो कि ऐसा करके अपने प्रियतम को प्रसन्न कर रही हो या कोई मनचाही मांग प्रस्तुत कर रही हो। कहीं-कहीं तो देवियां नृत्य करके नये-नये वस्त्र धारण कर, स्वांग निकाल कर अपनी प्रसन्नता को अभिव्यक्त करती हैं। शिमला जिला में रोहड़ू मेला २२-२३ अप्रैल, बैशाख नौ को किसी से भूला नहीं जिसमें लोकनृत्य, नाटी दर्शक को विभोर कर देते हैं। राजगढ़ में प्रसिद्ध मेला १४ और १७ अप्रैल को बैशाख प्रविष्टे २ से ५ तक बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है जिससे यहां के लोगों की सांस्कृति, रहन-सहन जन-जीवन, खान-पान, आदर भाव, अतिथि प्रेम व आभूषणों पर की गई कला का अनमोल ज्ञान मिलता है।

नृत्यों का प्रचलन है। रामलीला में युवक युवतियां अभिनय करने के लिए नृत्य का सहारा लेते हैं और लोकगीतों, नृत्यों को आकर्षक बनाते है। हिमाचल के गद्दी, कुल्लू, सिरमौर, किन्नौर व महासु के लोग नाटी व नृत्य के लिये मेलों व उत्सवों का आयोजन करते हैं जिसमें न केवल यहां के लोक गीतों व नृत्यों का ज्ञान होता है परन्तु इनको और लोकप्रिय व उन्नत करने का शुभअवसर भी प्राप्त होता है।

भाषा अनुदेशक
औद्योगिक प्रशिक्षण संस्था
शिमला-१७१००५

भारतीय भाषाओं का अधिष्ठान

पंचम विश्व पुस्तक मेला

नरेन्द्र कुमार

देश के पुस्तक प्रेमियों प्रकाशकों के लिय यह संतोष का विषय है कि भारत में भी अन्य विकसित देशों की तरह विश्व पुस्तक मेले की परम्परा स्थापित हो गई है।

पहला विश्व पुस्तक मेला सन १९७२ में आयोजित किया गया था। जो नैशनल बुक ऑफ इंडिया का पहला प्रयास था। दूसरा विश्व पुस्तक मेला उसके चार वर्ष बाद सन १९७६ में और उसके बाद दो वर्ष में तीसरे तथा चौथे विश्व पुस्तक मेले क्रमशः १९७८-८० में सम्पन्न हुए। द्वितीय, चतुर्थ व पंचम विश्व पुस्तक मेले में मुझे स्वयं भाग लेने का सुअवसर प्राप्त हुआ। २९ फरवरी, १९८० को चतुर्थ विश्व पुस्तक मेले के अवसर पर भारत के राष्ट्रपति श्री रेड्डी ने आशा व्यक्त की थी कि विश्व पुस्तक मेलें, देश विदेशों में पुस्तकों के माध्यम से हमारी संस्कृति प्रसार करने में सक्षम होंगे और सामान्य पाठकों की ज्ञान पिपासा की तुष्टि करेंगे। उन्हें यह भी यकीन था कि पुस्तक मेलों का यह क्रम उत्तरोत्तर विकास करेगा। उनकी आशा के अनुरूप ही ५ फरवरी से १५ फरवरी १९८२ तक, पंचम विश्व पुस्तक मेला राजधानी के प्रगति मैदान में आयोजित हुआ। मेले का उद्‌घाटन माननीया प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गान्धी ने ४ फरवरी १९८२ को सांय पांच बजे प्रगति मैदान के खुले रंगमंच पर हर्षध्वनि में किया।

इस मेले की उतरोत्तर लोकप्रियता का यह प्रमाण है कि जहां सन १९७२ में प्रथम विश्व पुस्तक मेले में कुछ विदेशी प्रतिनिधियों व दस विदेशी प्रकाशकों ने भाग लिया था वहां १९८० के पुस्तक मेले में लगभग ५० विदेशी प्रतिनिधियों ने भाग लिया। प्रथम विश्व पुस्तक मेले में लगभग १५२ प्रकाशकों ने भाग लिया परन्तु चतुर्थ और पंचम मेले में क्रमशः ३५० व ४५० प्रकाशकों के अलावा ६० विदेशी २२ विकासशील विदेशी शिष्ट मण्डलों ने भी मेले में भाग लिया। भारत व विदेशी पत्रकारों लेखकों विचारकों शिक्षा शास्त्रियों ने प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया और पांच लाख के लगभग पुस्तक प्रेमी सामान्य दर्शक इस मेले में आए। मेले की कलात्मक संरचना साज-सज्जा आदि सुप्रसिद्ध वस्तुकार श्री शम्भू चौधरी ने की थी।

विगत मेलों में अधिक प्रकाशक अंग्रेजी पुस्तकों के रहे जिसमें भारतीय भाषाओं के पाठकों प्रकाशकों का असन्तुष्ट रहना स्वाभाविक था परन्तु पंचम मेले में आखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक-संघ व नैशनल बुक ट्रट ऑफ इण्डिया के सहयोग से बहुत बड़े पैमाने पर हिन्दी मण्डप का आयोजन किया गया था जिसमें हिन्दी के अतिरिक्त भारत की अन्य भाषाओं के प्रकाशकों ने भी बड़े उत्साह से भाग लिया। दर्शकों व पाठकों ने इसकी बहुत सराहना की और यह महसूस किया कि अपने

देश के प्रकाशन विदेशी साहित्य प्रकाशनों से किसी भी दृष्टि में कम नहीं है। चौथे मेले की भान्ति इस बार भी यह मण्डप जिसमें भारतीय भाषाओं के लगभग दो सौ प्रकाशकों ने भाग लिया अलग से प्रदर्शित किया गया। यहां पर सभी प्रकाशकों के सभी प्रकाशन उपलब्ध थे परन्तु १९८०-८१ के उत्कृष्ट प्रकाशनों को विशेष रूप से प्रदर्शित किया गया। इस मेले के आयोजन का श्रेय नैशनल बुक ट्रस्ट आफ इण्डिया को है जिसके प्रयास से यह मेला सम्पन्न हुआ। १९८० के बाद से अब तक नैशनल बुक ट्रस्ट तथा दूसरे भारतीय प्रकाशकों ने मिल कर भारत तथा विदेशों-लंदन, फ्रकफूर्ट, लार्पजिग, मारिशस, चीन आदि में लगभग २५ पुस्तक मेले आयोजित किए हैं।

मेले के दौरान "कम मूल्य में सभी के लिए पुस्तकें" विषय पर युनेस्को के सहयोग से "अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें ३० विदेशी प्रतिनिधियों के अतिरिक्त भारत के विभिन्न भागों से आए प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया। संगोष्ठी ५ फरवरी से ७ फरवरी तक चलती रही। इसके अलावा हर रोज ही विभिन्न संगठनों द्वारा गोष्ठियां परिसंवाद और सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किए गए।

संक्षेप में यह कि ५ फरवरी से १५ फरवरी १९८२ तक मेले का समय उन लाखों पुस्तक प्रेमियों, ज्ञान पिपासुओं, शिक्षा शास्त्रियों, साहित्यप्रेमियों, व्यवसायियों और उद्यमियों के लिए स्वर्णिम अवसर रहा। आशा है कि छठा पुस्तक मेला इससे भी कहीं अच्छा होगा। इस मेले के आयोजन के लिए नैशनल बुक ट्रस्ट के अधिकारी व कर्मचारी बधाई के पात्र हैं, जिनके अनथक प्रयास से मेला १५ फरवरी १९८२ सांय ८ बजे सम्पन्न हुआ।

हिमाचल कला, संस्कृति
भाषा अकादमी, पीच ब्लाज़म
कॉटेज, शिमला-२

मध्यकालीन रोमांस

(हिन्दी प्रेमाख्यान तथा पंजाबी किस्साकाव्य : तुलनात्मक अध्ययन)

डॉ० मैथिली प्रसाद भारद्वाज

आख्यान

साहित्य में आख्यान अथवा कथा-तत्व का आग्रह लोक तथा लोकधर्मी परम्परा से सम्बद्ध है। लेखन, लेखन के उपयुक्त सजगता व शक्ति, लेखन-शैली तथा लिखित सामग्री के संरक्षण व प्रसारण की सुविधा सदा से प्रायः अभिजात या उच्चवर्ग के हाथ में रही है। साहित्य में उच्च-वर्ग का आग्रह मतवादी उद्देश्य-प्रतिपादन, सामन्ती अभिजात्य सामाजिक आदर्श के प्रस्थापन, उच्च-वर्गीय ऐश्वर्य की अभिव्यक्ति, आडम्बरपूर्ण सौन्दर्य-शृंगार वर्णन तथा शैली पक्ष में अत्यधिक अलंकृत, श्रमसाध्य, कलात्मक तथा दुरुह आयोजन की ओर रहता है। विश्व भर का प्राचीन साहित्य या तो मतवादी है या अत्यधिक अलंकृत दरबारी। ऐसे साहित्य में आख्यान अथवा

> **शोध-समीक्षा-सार**
>
> **हमने अनुसन्धित्सुओं के शोध प्रबन्ध के सार संक्षेप सोमसी में प्रकाशित करने आरम्भ लिए हैं। इसी सन्दर्भ में इसकी चौथी किश्त प्रकाशित की जा रही है।**

कथा-तत्व का आश्रय भी लिया जाता है, पर वह सदा प्रच्छन्न, महत्वहीन तथा विशिष्ट उद्देश्य में सहायक मात्र होता है। विशुद्ध लोकप्रिय आख्यान प्राचीन साहित्य-परम्परा में कभी मान्य नहीं रहे है।

ऋग्वेद के आख्यानों को अब किसी भ्रमवश या विशेष घटनावश इस कर्मकाण्ड के संग्रह ग्रन्थ में सम्मिलित लोक कथा का अंश माना जाता है (अध्याय २)। परवर्ती संहिताओं व ब्राह्मणों में वैदिक आख्यानों को विशिष्ट कर्मकाण्ड–प्रतिपादक, नैतिक तथा आध्यात्मिक अर्थों से समन्वित करने के प्रयास हुए हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों के आख्यान विशिष्ट उद्देश्य के वाहक मात्र हैं। पुराण कथाओं का आग्रह निजधरी व्यक्तित्वों के महत्वस्थापन तथा मतवादी विश्वासों की पुष्टि करने का है। जातक अवदान कथाएं सीधी लोककथा-भण्डार से आती हैं, पर उन्हें लिखित रूप भी विशिष्ट उद्देश्य के साधक बनाकर ही किया गया है। महाभारत कथाओं का बृहत् भण्डार है,

पर कथा कहना उसका उद्देश्य नहीं। वह विकसनशील महाकाव्य है। कथाओं का आग्रह चरित-नायकों व विशिष्ट अभिजात्य सामाजिक मर्यादाओं का प्रतिपादन है। रामायण में भी एक कथा कही गई है, पर उसका आदि काव्य या आदि महाकाव्य नाम उसकी अलंकृत अभिव्यक्ति तथा विशिष्ट काव्य-शास्त्रीय शैली के कारण है। परवर्ती संस्कृत काव्यशास्त्रीय विवेचन में साहित्य के मतभेदों में काव्यत्व प्रमुख है, वह चाहे दृश्य रचना हो या श्रव्य, गद्य हो या पद्य अथवा प्रबन्धात्मक रचना हो या मुक्तक। आख्यान अथवा आख्यानमूलक रचना को काव्य के वर्गीकरण में स्वीकार्य ही नहीं माना गया। कथा तथा आख्यायिका नामक गद्यकाव्य की विधाएं तथा उदाहरण-रूप में विवेचित रचनाएं भी गद्य में काव्य अधिक है कथा-रचनाएं कम। प्राकृत तथा अपभ्रंश की कथा रचनाओं में लोक के सांनिध्य के कारण लोक तथा कथा-तत्वों का प्राबल्य हो जाता है पर उन में भी आग्रह मतवादी उद्देश्य सिद्धि अथवा अलंकृति की ओर बना हुआ है। इस पर भी संस्कृत काव्य-परम्परा ने इन भाषाओं व इनमें लिखित रचनाओं को कभी काव्य अथवा साहित्य के वृत्त में स्वीकार नहीं किया। हिन्दी व पंजाबी को आख्यानमूलक रचनाओं में भी अब तक का विवेचन उसी प्राचीन आग्रह का स्पष्ट परिचय देता है। हिन्दी में जायसी, कुतुबन, मंझन, उसमान आदि को कतिपय अलंकृत, विशिष्ट परम्परागत शैली में अभिव्यक्त तथा किसी उद्देश्यपरक प्रछन्न अर्थ की वाहक रचनाओं को साहित्यिक विवेचन एवं वर्गीकरण में परिगणित किया जाता रहा है। हिन्दी तथा पंजाबी साहित्य के इतिहासों में विशुद्ध कथा कहने वाली सैंकड़ों छोटी कथाओं व किस्सों को नाम-परिगणन के उपयुक्त भी नहीं समझा गया। कहीं यदि कोई छोटी-मोटी सूची दी भी गई है तो उन रचनाओं को घटिया, हीन, निकृष्ट आदि कहकर छुट्टी प्राप्त कर ली गई है। (क्योंकि उनमें अलंकृत अभिव्यक्ति और आदर्शात्मक उद्देश्यपरक आग्रह विद्यमान नहीं है)। उपलब्ध पंजाबी किस्सों की संख्या ७०० व १००० के बीच आंकी-जाती है, पर अब तक दामोदर, पीलू, वारिस, मुकबल, हाशम, फजलशाह, मुहम्मदबख्श अहमदयार, कादिरयार आदि लगभग एक दर्जन किस्साकार ही काव्य की अलंकृति, विशिष्ट अभिव्यक्ति तथा उद्देश्यपरक आग्रह के कारण पंजाबी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में स्थान पा सके हैं। लघु आकार के विशुद्ध कथात्मक पंजाबी किस्सों व उनके लेखकों को पंजाबी के आलोचक व इतिहासकार घटिया, हीन आदि कहने में संकोच नहीं करते। किस्सों की ग्रामीण जनता में भारी मांग के कारण व्यापारिक संस्थाएं हर वर्ष सहस्रों किस्से साधारण पत्रों पर साधारण छपाई में छापती- बेचती रही हैं। भाषा आदि की दृष्टि से ऐसे विशुद्ध सस्ते व्यापारी आयोजनों में दोष आ जाना स्वाभाविक है। पंजाबी के आलोचक इन प्रकाशनों की बड़ी निन्दा करते रहे हैं जबकि अपने सब दोषों के बावजूद भी किस्सों की लोकप्रिय मांग से प्रेरित ये प्रकाशन ही उन बड़े किस्सों के भी प्रचारक, प्रसारक एवं रक्षक रहे हैं जिन पर पंजाबी के अभिजात साहित्यकारों को आज गर्व है। मध्यकालीन यूरोप में भी गाथाओं को साहित्य-वृत्त में स्वीकार नहीं किया गया था। गाथाओं के आधार पर विकसित अलंकृत रोमांस अवश्य स्वीकृत हुए, पर उन्हें भी कभी श्रेष्ठ साहित्य का स्थान प्राप्त नहीं हो सका। यूरोप में उपन्यास साहित्य १८वीं शताब्दी के अन्त तक अभिजात साहित्य में मान्य हो सका। कहानी तो १९वीं शताब्दी के आरम्भ में ही उच्च वर्ग का ध्यान आकृष्ट कर सकी। भारतीय भाषाओं में भी साहित्य

क आधुनिक काल में प्राचीन क्लासिकी रचनाओं, नाटकों अथवा महाकाव्यों (सामन्तीयुग एव समाज की विधाओं) की ओर ही आग्रह प्रबल रहा है। उपन्यास को आरम्भ में हल्की, छिछली तथा चरित्र बिगाड़ने वाली रचनाएं माना जाता रहा है। (अर्ध कथानक के रचयिता जैन कवि बनारसीदास ने भी १६०३ ई० के आस पास अपने काल की आख्यानक रचनाओं-मृगावती तथा मधुमालती आदि को छिप-छिपाकर पढ़ने का उल्लेख किया है)। कुछ काल के अनन्तर जब उपन्यासों को स्वीकारा भी गया तो उनमें समाविष्ट सामाजिक उद्देश्य तथा विशिष्ट चरित्र-विकास के कारण ही। जासूसी ऐय्यारी की विशुद्ध कथात्मक रचनाओं को उच्च साहित्यिक परम्परा ने सदा हेय माना है।

यहां एक तथ्य विचारणीय है। परम्परागत साहित्यिक वृत में सहज स्वीकार न होने पर भी आख्यानमूलक साहित्य सदा अत्यधिक लोकप्रिय रहा है। वैसे तो लोक में सरल गाम्य एवं परिकथाओं के रूप में यह साहित्य विद्यमान रहता है पर लिखित रूप में इसका प्रारम्भ व विकास हर देश व भाषा में अभिजात के विरुद्ध लोक के जागरण के साथ हुआ है। जातक-अवदान कथाएं, पंचतन्त्र, हितोपदेश, गुणादय की बृहत्कथा, परवर्ती कथासरित्सागर, बृहत्कथाकोश वैतालकथा, पुत्तलीकथा, प्राकृत-अपभ्रंश का आख्यान साहित्य तथा हिन्दी व पंजाबी की आख्यान-मूलक रचनाएं अपने-२ काल के विशिष्ट जनजागरण के साथ रचित होती है और लोक के चैतन्य की सूचक है। मानवता के विकास की दृष्टि से तथा मानव की महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ति के रूप में लोक कला लोकसाहित्य तथा लोकतत्वों के अध्ययन का आरम्भ बहुत ही अर्वाचीन तथा इसी शताब्दी की बात है। हिन्दी प्रेमाख्यान तथा पंजाबी किस्साकाव्य का अध्ययन भी विशिष्ट लोकजागरण तथा लोकतत्वों के संदर्भ में होना अपेक्षित था। प्रस्तुत अध्ययन में एक दृष्टि यह रही है।

प्रेम

यौन के कारण नर-नारी का परस्पर आकर्षण मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है पर अतिप्राचीन काल से ही समाज संरचना के आर्थिक-विकास सम्बन्धी आधारभूत कारणों ने इस आकर्षण की पूर्ति को व्यक्तिगत चयन का विषय न बनने देकर परिवार तथा समाज का अधिकार एवं उत्तरदायित्व बनाए रखा है। व्यक्ति अपने लिए मित्र, राज्य, घोड़ा-हाथी, अस्त्र-शस्त्र, विशिष्ट कलात्मक उपकरण, धन-सम्पत्ति, आभूषण आदि वस्तुओं का व्यक्तिगत रुचि-अरुचि के आधार पर चयन करने में काफी स्वतन्त्र रहा है। परन्तु जीवन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण अपरलिंगी जीवन साथी के चयन का उसे कभी अधिकार प्राप्त नहीं रहा है। सामाजिक परम्पराओं तथा प्रचलनों के गुण-अवगुणों के लिए कभी भी कोई व्यक्ति या व्यक्ति-समूह उत्तरदायी नहीं होता है। एक संजीव-सचेतन प्रक्रिया के रूप में समाज द्वारा अनायास तथा क्रमिक रूप में अपने बृहत्तर लाभ-अस्तित्व (एग्जिस्टेंस) तथा आत्मरक्षा (प्रिजरवेशन) के लिए स्वतः नियम सिद्धांतों का विकास हो जाता है। इसलिए कबीलाई समाज को एक इकाई के रूप में सुदृढ़ रखने के लिए आदिम मानव समाज में ही परिवार की इकाई के निर्माण का हानिकर तत्व समझ कर विकसित नहीं होने दिया गया। यह तथ्य पशु-प्राणियों में भी देखा जा सकता है। हिरण, हाथी आदि मुक्त यौन संबन्ध रखने वाले पशु-प्राणी ही समूहों अथवा यूथों में रहते हैं। अपने साथी का चयन करने वाले पक्षी या पशु प्रायः परिवारों या जोड़ों में रहते हैं। आदिम मानव के अस्तित्व के लिए परिवार की

लघु-इकाई उपयुक्त नहीं थी। जीवन के कुछ विकसित व संकुल हो जाने पर परिवार व्यवस्था का स्वाभाविक विकास जब रुक नहीं सका तो उसकी संघटना का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व एवं अधिकार कबीले अथवा कुल-परिवार द्वारा अपने हाथ में ले लिया गया। साथी का स्वतन्त्र-चयन तथा दो व्यक्तियों की एकान्तिक मैत्री अपने आप में व्यक्तिगत स्वार्थ से पूर्ण तथा बृहत्तर सामाजिक हित की विरोधी होती है। समाज का बृहत्तर स्वार्थ व्यक्ति को उसी सीमा तक स्वातन्त्र्य प्रदान करता है जहां तक समाज रचना पर इसका दुष्प्रभाव न हो। जीवन साथी के रूप में पति-पत्नी के चयन की स्वतन्त्रता आर्थिक-सामाजिक कारणों से मध्यकालीन सामन्ती तथा आरम्भिक औद्योगिक युग तक समाज-संरचना के लिए अवश्य हानिकर होती।

परन्तु जब समाज की समष्टि के बृहत्तर हितसाधक नियम व्यष्टि के हित पर अधिक हावी हो जाते हैं तो उसकी प्रतिक्रिया दो रूपों में अभिव्यक्त होती है।

(क) विशिष्ट सजग सचेत व्यक्ति उन नियमों को अमान्य करते हैं, इसके लिए समाज का दण्ड सहन करते है पर प्रकारान्तर से अन्य असन्तुष्ट जनों में नेता रूप में स्वीकृत होते हैं। मानव जाति की सभी सामाजिक-धार्मिक क्रान्तियों के मूल में यही प्रक्रिया रही है।

(ख) समाज से टकराने में अशक्त व्यक्ति विभिन्न काल्पनिक, रोमांसिक साधनों से निरोध द्वारा उत्पन्न असंतोष को अभिव्यक्त करते हैं। आरम्भ में यह विरेचक अभिव्यक्ति भी समाज के उच्च नियामक वर्ग में अमान्य होती है। पर कालान्तर में लोकप्रिय आकर्षण के कारण इसे कई प्रकार के आदर्शात्मक-नैतिक उद्देश्यों से समन्वित कर मान्यता प्रदान की जाती है। यह किसीं सुनियोजित षड्यंत्र का परिणाम न होकर सहज अवचेतन विकास-प्रक्रिया है।

नर-नारी के स्वतन्त्र चयन की सुविधा अलभ्य होने पर इस नियम की अवहेलना करने वाले व्यक्ति सदा से समाज के दण्ड व अत्याचार के भागी बनते रहे हैं। दूसरे रूप में इस भाव की अभिव्यक्ति साहित्यिक रोमांसों, मतवादी प्रेम सिद्धान्तों, गुह्य साम्प्रदायिक साधनों आदि के रूप में होती है।

हिन्दी तथा पंजाबी के प्रेमाख्यानों के अध्ययन में भावुक-प्रणय की साहित्यिक अभिव्यक्ति का यह तत्व दूसरी दृष्टि रही है। भावुक-प्रणय एवं प्रणय पात्र के स्वतन्त्र-चयन के यथार्थ जीवन में अमान्य होने के कारण हिन्दी तथा पंजाबी में ही नहीं, मध्यकाल में विश्व भर में जागृत लोक द्वारा नर-नारी के भावात्मक-रोमांसिक आकर्षण को प्रेमाख्यानों के माध्यम से साहित्यिक अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है।

प्रेमाख्यान

आख्यान तत्व का संबन्ध अभिजात्य के विरुद्ध लोक से है, इस प्रकार भावात्मक रोमांस का सम्बन्ध भी परम्परावादी उच्च वर्ग की रूढ़ता के विरुद्ध सजग व्यक्तिवादी लोक से है। दोनों तत्वों का सहज, स्वाभाविक समन्वय प्रेमाख्यानक रचनाओं में हो जाता है। विशिष्ट मतवादी

प्रेम-साधना तथा गुह्य साधना भी परोक्ष में अभिजात्य के समष्टिगत निरोध के विरुद्ध मतवादी प्रतिक्रियाएं हैं। यह चाहे तान्त्रिक-सिद्धों की मातृ शक्ति-पूजा हो या सूफियों का प्रेम दर्शन, नवईसाइयों की विशिष्ट भावुक प्रेमशक्ति हो या प्रपत्तिमूलक प्रेमानुगाभक्ति के अनुयायियों की राधा-कृष्ण या कृष्ण-गोपी प्रेमलीला, इन सब के माध्यम से परम्परागत मूल्यों के विरुद्ध सजग व्यक्तित्वों का असंतोष एवं विद्रोह विरेचन चाहता है। सूफीमत, कृष्ण की प्रेमनुगा भक्ति के मतवादी सिद्धान्त या यूरोपीय उत्कट प्रणयवादी मत (ट्राबोडोर गायक, ड्रूइड पुरोहित तथा फ्रांसी प्रावेंसेलस आदि) साहित्य में भावुक प्रणय के आरम्भकर्त्ता या संस्थापक न होकर बृहत्तर सामाजिक असंतोष के भिन्न देशीय, भिन्नकालीन प्रकटीकरण है। प्रातः बेला पक्षियों के कलरव के आरम्भ का कारण बनती हैं, पक्षियों का बोलना प्रातः काल के आगमन का कारण नहीं होता। इसी प्रकार मूलभूत सामाजिक असंतोष विभिन्न धार्मिक, मतवादी, नैतिक तथा दार्शनिक नव-सिद्धान्तों का जन्मदाता होता है। मध्यकाल की सामान्य प्रवृत्ति के अनुसार किसी भी तत्व की (सचेतन अथवा अवचेतन) मतवादी आश्रय में अभिव्यक्ति सहज ग्राह्य हो जाती रही है। इसलिए रोमांस-भाव की साहित्यिक-स्वीकृति तथा दार्शनिक अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त मत-सम्प्रदाय कुछ सीमा तक सहयोगी अवश्य रहे हैं। लोक का सांनिध्य लोकतत्व, प्रणयतत्व, भावात्मकविद्रोह तथा सामाजिक स्वीकृति आदि के तत्वों का समन्वय कर देता है। यहां तक कि यह वैचारिक जागरण अभिव्यक्ति क्षेत्र में नव भाषा तथा नवीन छन्द योजना तक का प्रेरक बनता है। हिन्दी तथा पंजाबी प्रेमाख्यानों के अध्ययन में यह तीसरी महत्वपूर्ण दृष्टि रही है।

प्रस्तुत प्रबन्ध

(क) प्रस्तुत प्रबन्ध में प्रथम अध्याय में नर-नारी के प्रणय-मूलक सम्बन्धों का सैद्धांतिक विकासवादी तथा रोमांसिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। (ख) द्वितीय अध्याय में आख्यान तत्व का सैद्धांतिक विवेचन, विकास के कारण व परिस्थितियों तथा भारतीय आख्यान-परम्परा का अध्ययन प्रस्तुत हुआ है। (ग) तृतीय अध्याय में प्रथम दो अध्यायों के आधार पर प्रेमाख्यानों के वर्गीकरण का आधार स्थिर करने के अन्तर भारतीय प्रेमाख्यान परम्परा का न्यायदर्शक वर्गीकरण एवं सर्वेक्षण हुआ है। (घ) चतुर्थ एवं पंचम अध्यायों में उपर्युक्त आधार पर क्रमशः हिन्दी तथा पंजाबी प्रेमाख्यानों को सर्वेक्षित एवं वर्गीकृत करने का प्रयास किया गया है। (ङ) षष्ट एवं सप्तम् अध्यायों में क्रमशः आख्यान एवं प्रणय तत्वों के आधार पर हिन्दी एवं पंजाबी प्रेमाख्यानों का तुलनात्मक अध्ययन हुआ है। (च) छोटे बड़े पंजाबी किस्से सैंकड़ों की संख्या में प्राप्त हैं। प्रणयतत्व-विहीन पंजाबी किस्सों को अपने अध्ययन के वृत में स्वीकार नहीं किया गया है। अध्ययन को और सीमित करने के लिए प्रणयमूलक किस्सों में भी विभिन्न वर्गों की लगभग ५५ प्रतिनिधि रचनाओं को लिया गया है। अन्त (परिशिष्ट) में पंजाबी के उपलब्ध परन्तु प्रस्तुत प्रबन्ध में अविवेचित किस्सों की सूची दी गई है। इस प्रकार कार्य को यथा सम्भव पूर्ण, महत्वपूर्ण एवं उपादेय बनाने का प्रयास हुआ है।

मुख्य उपलब्धियां

प्रेमाख्यानमूलक साहित्य के प्रेम तथा आख्यान तत्वों के समाजशास्त्रीय विश्लेषण एवं

बृहत्तर आख्यान साहित्य के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी तथा पंजाबी प्रेमाख्यानों के तुलनात्मक अध्ययन के अनन्तर हम निम्न निर्णय प्राप्त करते हैं—

मानव के सामाजिक विकासक्रम में विश्व भर में मध्यकाल तक तथा भारतीय संदर्भ में आधुनिक काल तक भी, नर-नारी के यौनाधारित चयन-स्वातन्त्रय के लिऐ सामाजिक दृष्टि से कोई अवसर उपलब्ध नहीं रहा है। सामाजिक संरचना इस दृष्टि से अपने बृहत्तर हित की दृष्टि से भावुक ऐकान्तिक प्रणय के विरुद्ध विविध सामाजिक-आर्थिक-नैतिक नियन्त्रण प्रतिक्रियाओं एवं उत्पादनों का विकास कर लेती है। मुख्यता इसका आधार आर्थिक होने के कारण नियन्त्रण मूल्य अभिजात्य समाज द्वारा विकसित एवं नियोजित होते हैं। इस पर भी मानव की सहज यौन-प्रवृत्ति तथा व्यक्तिगत रुचि-चेतना विशिष्ट व्यक्तियों के प्रति विशिष्ट भाव की प्रेरक, एवं निषेध की अवस्था में प्रकृत सामाजिक विरोध अथवा भावात्मक-मानसिक-रोमांसिक पलायन की प्रेरक रही है। विधि-निषेधों को अमान्य करने वाले व्यक्ति धीर सामाजिक यन्त्रणा के मूल्य पर भी बृहत्तर समाज के लिए विशिष्ट रोमांसिक, भावुक तथा आकर्षक विरेचक-भाव के माध्यम बनते हैं। उसी बृहत्तर समाज द्वारा प्रकृत जीवन के इस अप्राप्य-काव्य को साहित्यक रूप में अभिव्यक्ति देने का उपक्रम भी होता है। इस साहित्यिक अभिव्यक्ति को भी अभिजात्य परम्परा सहज स्वीकृति प्रदान नहीं करती, परन्तु विभिन्न कालों में लोक का नवचैतन्य अथवा सफलविद्रोह इस प्रकार की कृतियों की प्रभूत रचना एवं प्रसार का कारण बनता है। सामाजिक स्वीकृति तथा अस्वीकृति के तत्वों को विविध स्तरों पर विद्यमानता के अनुसार इस प्रकार की रचनाएं भी रुढ़िबद्ध आकर्षण तथा सामाजिक विवाह में पर्यवसित होने वाली कृतियों के वर्ग से लेकर उत्कट भावुक प्रणय, संघर्ष एवं सामाजिक मूल्यों की सम्पूर्ण अवमानना के परिणामस्वरूप मृत्यु तक के तत्वों से समन्वित रूप में उपलब्ध होती है। साहित्यिक अभिव्यक्ति में सामाजिक विधि-निषेधों की अमान्यता तथा 'सामाजिक व्यभिचार' (एडल्ट्री) की स्थापना की सीमा ही प्रेमाख्यानक कृति की सफलता एवं प्रभाव की सीमा कही जा सकती है।

'आख्यान' अभिजात्य साहित्य परम्परा में एक अनावश्यक सा तत्व रहा है। परन्तु नवजागृत लोक आख्यान को उसके सहज आकर्षण के कारण अपनी मुख्य अभिव्यक्ति विधा के रूप में स्वीकार करता है। परिणामतः आख्यान का सहज आग्रह लोकतत्वों एवं लोक परम्पराओं की ओर रहता है। अभिजात्य का संरक्षण उपलब्ध न रहने पर भी अपनी सहज शक्ति के कारण इस वर्ग का साहित्य रचित, प्रसारित एवं सुरक्षित होता है। लोक की नवचेतना का समाहित परिणाम होने के कारण इस वर्ग की रचनाओं में आख्यान एवं भावुक प्रणय के तत्वों का सहज पर्यवसान हो जाता है। वैदिक संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश की विस्तृत आख्यानमूलक साहित्य-परम्परा इसका प्रमाण प्रस्तुत करती है।

हिन्दी तथा पंजाबी का प्रेमाख्यानमूलक साहित्य भी अपने देश-काल के प्रभावों को समाहित करते हुए भी भारतीय आख्यानों की इसी सुदीर्घ परम्परा की महत्वपूर्ण कड़ी है। विभिन्न मत-सम्प्रदायों, समकालीन मान्यताओं तथा निकटवर्ती देशों की साहित्यिक-सामाजिक परम्पराओं से

प्रभाव ग्रहण करते हुए भी इन कथाओं की मूल चेतना गहरी भारतीय आख्यान परम्परा से सम्बद्ध रही है। सीमान्त प्रदेश होने से जहां पंजाब के कुछ आख्यानों पर विदेशी प्रभाव कुछ अधिक स्पष्ट है, वहां मध्यदेशीय हिन्दी आख्यानों ने उन प्रभावों का भी भारतीयकरण कर लिया है। परिकथा कोटि की रचनाओं का प्रणयारम्भ, प्रणय-विकास, संघर्ष तथा अन्त प्रायः रुढ़िबद्ध एवं असम्भावित है। लोकतत्वों तथा रोमांसिक कल्पनाओं की उड़ान उनमें अधिक है। ग्रामकथाओं पर आधारित प्रणयमूलक प्रेमाख्यानों में प्रणयारम्भ, संघर्ष तथा अन्त प्रकृत भावुकतापूर्ण तथा छूने वाला है। पंजाबी की ग्राम-प्रणय कथाओं में प्रणय का आग्रह अधिक भावुक, उत्कट तथा प्रकृत है। यथार्थ सामाजिक विरोध के कारण ये प्रायः दुःखान्त रचनाएं हैं। हिन्दी की अधिकसंख्यक रचनाओं पर परिनिष्ठित भारतीय साहित्यिक परम्परा का प्रकट प्रभाव है, जिसके कारण अभिव्यक्ति पक्ष विशिष्ट अलंकृत है। प्रणय-पक्ष में अधिकसंख्यक रचनाएं परिकथा कोटि के रहस्य रोमांच के काल्पनिक तत्वों से भरपूर हैं। आख्यान-तत्वों की दृष्टि से ये दोनों भारतीय आख्यानों की सतत् प्रवहमान परम्परा की महत्वपूर्ण समीपस्थ कड़ियां हैं।

हिन्दी विभागाध्यक्ष,
पंजाब विश्वविद्यालय
चण्डीगढ़

बदलते सामाजिक मूल्य
और
आधुनिक हिन्दी नाटक

डॉ० ओम प्रकाश सारस्वत

मूल्यों की अवधारणा

समाज में पायी जाने वाली मान्यताओं विचारों एवं धारणाओं में परिवर्तन का नाम ही 'बदलते सामाजिक मूल्य' है। मूल्य लोकमानस की वे लहरियां हैं जिनसे समाज अस्तित्ववान् रहता है। मूल्य, मानव व्यक्तित्व को या सामाजिक अन्तः प्रक्रिया की व्यवस्था को संगठित रखने में सहायक होते हैं। वे कुछ सामान्य आदर्शो लक्ष्य या नीतियों को सामाजिक जीवन में प्रतिष्ठित कर, सामाजिक संघर्ष की भावनाओं अथवा सामाजिक जीवन की अनिश्चितताओं को कम करते हैं। मूल्य सामाजिक व्यवस्था के मुख्य उपादान हैं।

सब प्रतिमानों सब मूल्यों का स्रोत मानव का विवेक है। विवेक से विचार बनते हैं विचारों से धारणा का जन्म होता है और धारणा से मूल्यों का निर्माण। प्रत्येक समाज की जीवन एवं व्यवहार के विषय में 'कुछ विशिष्ट धारणाएं' होती हैं। ये धारणाएं ही बहुमत होकर मूल्य-पद पर आसीन होती हैं।

मूल्य कोई शाश्वत मान्यताएं नहीं है। प्रत्येक युग के अपने अलग मूल्य होते हैं। ये काल-साक्षेप हैं। प्राचीन आवश्यकताएं ही धारण मूल्य-निर्धारण करती हैं।

मूल्यों का स्वरूप

समाज शास्त्रीय दृष्टि से विद्वानों द्वारा मूल्यों का पर्याप्त विवेचन हुआ है। डब्ल्यू गोल्ड स्मिथ के अनुसार—'मूल्य' निश्चित प्रभाव खोजने के सांस्कृतिक आयाम है। बोगार्डस ने 'प्रकृत्या सभी मानवीय सम्बन्धों और व्यवहारों को मूल्यों की संज्ञा दी है।' ब्रूट्स के अनुसार 'दैनिक जीवन में व्यवहार को नियंत्रित करने के सामान्य सिद्धान्त हैं। मूल्य केवल मानव-व्यवहार का दिशा निर्देश ही नहीं करते बल्कि अपने आप में आदेश और उद्देश्य भी होते है।' इस परिभाषा के अनुसार मूल्य मानव व्यवहार के नियामक आदर्शपूर्ण और उद्देश्यपूर्ण सामान्य सिद्धान्त हैं जो जीवन को दिशा देकर उसके औचित्य-अनौचित्य पर भी विचारते हैं।

डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित ने मूल्यों को आदर्श की कोटि में रखते हुए कहा कि 'मूल्य वह है जिसके पीछे हम चलना चाहें या उपलब्धि के योग्य समझें या उसे जीवन में महत्त्व दे सकें।

डॉ० प्रभाकर माचवे ने मूल्यों को नीतिशास्त्रीय 'वैल्यू' का पर्यायवाची माना है। डॉ० देवराज ने मूल्यों को श्रेष्ठ आचरणीय कार्य-व्यापार मानते हुए कहा है कि 'मूल्य' वे होते हैं जिनकी मनुष्य कामना करता है। चरम मूल्य, उन वस्तुओं स्थितियों तथा व्यापारों अथवा उनके उन विशिष्ट पहलुओं को कहते हैं जो मनुष्य की सार्वभौम संवेदना को आवेगात्मक अर्थवत्ता देते हुए दिखाई देते है। यहां आवेगात्मक अर्थवत्ता से अभिप्राय मूल्यों को भाववादी कोटि में स्वीकार करना है।

इस प्रकार मूल्यों के सम्बन्ध में अनेक धारणाएं हैं। कुछ विचारक मूल्यों को सार्वजनीन सार्वभौम श्रेष्ठ आचरणीय कार्य व्यापार मानने के पक्ष में तो कुछ समय सापेक्ष-व्यक्तिगत तथा आवश्यकता के अनुसार है। हमारे विचार से 'मूल्य वे श्रेष्ठ आचरणीय मान्यताएं हैं जो समाज की हितकामना से युक्त होती हुई उसे प्रेरणागति और दिशा देतीं हैं जिनका समाज के चरित्रिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहता है।

मूल्य संबंधी विभिन्न दृष्टिकोण

मूल्यों की विवेचना, साहित्य में विभिन्न दृष्टिकोणों से दी गई है। समाजशास्त्रियों के अतिरिक्त आदर्शवादियों, भौतिकवादियों, मनोवैज्ञानिकों एवं वैज्ञानिकों आदि ने भी मूल्य सम्बन्धी अपनी २ विचारधारणाएं, मान्यताएं प्रस्तुत की हैं। संक्षेप में मूल्य सम्बन्धी प्रमुख दृष्टिकोण निम्नलिखित हैं।

आदर्शवादी मूल्यदृष्टि

आदर्शवादी मूल्यदृष्टि जीवन का किन्हीं उच्च परिकल्पनाओं श्रेष्ठतम विचारों, श्रमसंकल्पों एवं नैतिकमर्यादावादी मान्यताओं से संवलित रहती है। आदशवादियों की दृष्टि में जीवन 'जो है' 'जैसा है' को भोगने का नाम नहीं अपितु किन्हीं सर्वोच्च हितकारी मूल्यों के लिए समर्पण का नाम ही जीवन है। संसार में रहते हुए परलौकिक तत्व प्राप्ति की शुभ एवं शिव की चिन्ता ही आदर्शवादी मूल्य दृष्टि है। भारतीय संस्कृति आदर्शवादी है अतः भारत में आदर्शवादी मूल्यदृष्टि को पर्याप्त महत्व दिया गया है।

भारतीय संस्कृति में वर्गचतुष्टय की परिकल्पना आदर्शवादी विचारधारा से प्रेरित है। वर्गचतुष्टय में चार पुरुषार्थों-धर्म-अर्थर्म-काम और मोक्ष की गणना है। चार पुरुषार्थ ही महान् मूल्य हैं आदर्शवादियों के अनुसार मानव जीवन का उद्देश्य धर्म-अर्थर्म-काम का परस्पर अनुपद्घाती सेवन करते हुए मोक्ष के लिए प्रयत्न करना है।

भौतिकवादी मूल्य दृष्टि

मार्क्सवादी मूल्य भौतिकवादी मूल्यदृष्टि है। कार्ल-मार्क्स ने पूंजीवाद की आलोचना कर आर्थिक आधारों पर मानव-मूल्यों की विवेचना की है। मार्क्स का दर्शन वर्ग भेद रहित समाजवाद की स्थापना का दर्शन है। जिसमें प्रत्येक व्यकित को उसकी योग्यता-आवश्यकता के अनुसार सुख के साधन उपलब्ध कराने का विधान है। इसमें श्रम के मूल्य को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। मार्क्सवादी सिद्धान्त का मानववादी उद्देश्य अमानवीय श्रमस्थितियों को दूर करना मनुष्य के

गुणवियोजन को वश में लाना श्रम को उन्मुक्त करना तथा श्रमजीवी जनता के लिए सुखसमृद्धि लाना है।

वैज्ञानिक मूल्य दृष्टि

विज्ञान किसी भी मूल्य को तर्क एवं ठोस आधारों पर परखता है। यह वस्तुवादी है। पदार्थ की सत्ता को महत्व देता है। विज्ञान दृष्टि निरपेक्ष कुछ नहीं स्वीकारता। उसके लिए आध्यात्मक, मुक्ति आदि मूल्यों का कोई महत्व नहीं। वह उपयोगितावाद से प्रेरित है। भौतिकता इसका मुख्य उपादान है। भावुकता का विज्ञान की दृष्टि में कोई मूल्य नहीं। आज विज्ञान ने अपनी उपयोगिता से मानव के मूल्यों को नये आयाम और नया-आधार दिया है।

मनोवैज्ञानिक मूल्य दृष्टि

मनोविज्ञान ने मानव मन के विचारों एवं मनोग्रंथियों का अध्ययन विश्लेषण करके उसके व्यक्तित्व को नये रूप में परिभाषित किया है। व्यक्तित्व का अवरोध और विकास कैसे होता है यह मनोविज्ञान के क्षेम का विषय है। मनोविज्ञान वस्तुतः मनोविज्ञान मानव-मन और समाज के समूह मन का अध्ययन कर यह बताता है कि वैयक्तिक एवं सामाजिक मूल्यों-अवधारणाओं के मूल में कौन से कारण सक्रिय रहते हैं। फ्रायड ने मनुष्य के 'स्व' को मानव मन की विभिन्न स्थितियों से सम्बद्ध करके मनोविश्लेषण के माध्यम से मानव को समझने तथा व्यक्तित्व के विश्लेषण का नया-आधार-प्रस्तुत किया है। सिगमंड फ्रायड के सिद्धान्तों से प्रभावित आज प्रभूत साहित्य, विश्व बाजार में उपलब्ध है। हिन्दी का नाट्य साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। यहां तक मूल्यों के सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक पक्षों की विवेचना की गयी है। प्रबन्ध में भारतीय समाज में, नाटकों के सन्दर्भ में मूल्य-परिवर्तन का क्रमिक-विकास दिखाया गया है। मूल्यान्वेषण की प्रक्रिया का नाटकीय-सन्दर्भ में यह कार्य विषय-विवेचन की दृष्टि से अपने आप में मौलिक और नवीन हैं।

सामाजिक परिप्रेक्ष्य में मूल्यों का महत्व असंदिग्ध है। मूल्य समाज के वे आधार-स्तंभ हैं जिन पर समाज की सभ्यता-संस्कृति की भव्य मीनार खड़ी होती हैं। मूल्यों का क्षेत्र अति व्यापक है। मूल्यों में युगानुरूप परिवर्तन अपेक्षित है। प्राचीन काल से लेकर अब तक सामाजिक मूल्यों में बदलाव आया है। धारणा एवं विचार की प्रक्रिया को पार करने के उपरान्त ही कोई मान्यता मूल्य पद पर प्रतिष्ठित होती है। किसी भी मूल्य को समाज में तभी मान्यता मिलती है जब वह बहुजन सम्मत होता है। किसी भी मूल्य का प्रारम्भ एक अथवा अनेक व्यक्तियों द्वारा होता है परन्तु समाज या समूह के लिए उसकी श्रेष्ठता प्रतिपादित हो जाने पर वह सामाजिक मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित है। व्यक्ति समाज एवं संस्कृति के संदर्भ में मूल्यों की भूमिका महत्वपूर्ण है। साहित्य मूल्यों की अभिव्यक्ति का परम्परागत एवं सफलतम माध्यम है। मूल्य समाज की 'आचार-संहिता' हैं नाटक चूंकि समाज के स्वरूप का अधिक-विश्वसनीय एवं लोकवृत्तानुकरण है अतः नाटकों के माध्यम से सामाजिक मूल्यों का प्रतिफलन व्यापक रूप में हो सका है। शोध-प्रबन्ध में मूल्य-प्रक्रिया को परिवर्तित-चेतना के अनुरूप दिखाया गया है।

समस्तशोध-प्रबन्ध को मुख्यतः पांच अध्यायों में विस्तारित किया गया है प्रथम अध्याय,

मूल्यों के स्वरूप विवेचन से सम्बन्धित है। दूसरा अध्याय भारतेन्दु कालीन-नाट्य-साहित्य में मूल्याभिव्यक्ति को उजागर करता है **भारतेन्दु काल में** मूल्य सम्बन्धी धारणा संक्रमण की स्थिति में थी। समाज में नूतन-सामाजिक-राजनैतिक चेतना के फलस्वरूप नयी मान्यताओं का उदय हो रहा था परन्तु समाज अभी परम्परागत मूल्यों को नकारने की स्थिति में नहीं था इस काल को मूल्यों के टकराव का काल कहा है। नाटकों में परम्परागत मान्यताओं को न दिखाकर केवल, उदित होती मूल्य चेतना को ही उजागर किया गया है। समाज में किस प्रकार नूतन मूल्यों के प्रति आग्रह बढ़ रहा था यह स्पष्ट कर दिया गया है। नूतन मूल्यों के उदय के कारणों का उल्लेख करना अनिवार्य था, फलतः पहले कारण या परिस्थितियां और फिर मूल्य विवेचन यह क्रम रहा है। भारतेन्दु काल के बाद, जो **सुधारवादी मूल्य दृष्टि** पनपी उसमें स्वतन्त्र विचार प्रस्थापना के लिए कोई अवकाश नहीं था। क्योंकि एक तो आचार्य द्विवेदी का व्यक्तित्व और दूसरे राजनैतिक वातावरण नाटककारों को प्रभावित किये हुए था। इस युग के मूल्य सुधार भावना एवं राष्ट्रीयता की मूल्य चेतना को ही अधिक व्यक्त करते हैं।

द्विवेदी युग के बाद हिन्दी साहित्य में एक नये युग का सूत्रपात हुआ जिसे कविता में छायावाद की संज्ञा दी गयी है। छायावाद युगीन-नाट्य दृष्टि को **रोमैण्टिक मूल्य दृष्टि** कहा है परन्तु यह रोमैण्टिसिज्म अंग्रेजी के अर्थों में शुद्ध रोमैण्टिसिज्म नहीं अपितु उससे भिन्न है। नाटकों में मूल्य विवेचना करते समय यह स्पष्ट कर दिया है। तद्युगीन मूल्यों को रोमैण्टिक-यथार्थवादी मूल्य भी कहा जा सकता है क्योंकि नाटकों की रचना धर्मिता यथार्थ से संवलित होती है। रोमैण्टिक मूल्य दृष्टि के बाद नाटकों में **यथार्थवादी-मूल्य चेतना** का अभिर्भाव हुआ। इस काल के नाटककारों ने स्वच्छन्दतावादी भावुकता, आदर्शों एवं ओढ़ी हुई फालतू नैतिकता को निराकृत कर नये मूल्यों मान्यताओं को वाणी दी। इस काल के नाटककारों में लक्ष्मी नारायण मिश्र एवं अन्य 'अश्क' आदि नाटककारों ने यथार्थवादी मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रयास किया।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में जो मूल्य विघटन की स्थिति उपजी है उसे स्पष्ट करने के लिए, उसमें **कारणभूत परिस्थितियों अथवा शक्तियों** की चर्चा अलग अध्याय में की गई है। इन कारणभूत शक्तियों में द्वितीय महायुद्ध का प्रभाव, संविधान, विज्ञान एवं आधुनिकीकरण की चेतना आदि प्रमुख रहे हैं। द्वितीय महायुद्ध प्रभाव ने विश्व चिन्तन को गहरे रूपों में प्रभावित किया है। इस महायुद्ध के प्रभाव ने जीवन में अनास्था, निराशाएं, कुण्ठा आदि को जन्म दिया है। भारत में भी यह स्थिति आई है परन्तु यहां यह स्थिति बहुत कुछ ओढ़ी हुई ही है।

संविधान ने अनेक नूतन मूल्यों को जन्म दिया। राष्ट्रीयता एवं अन्तर्राष्ट्रीयता में राष्ट्रीयता को अधिक प्रश्रय मिला है। भारतीय संविधान ने कई परम्परागत अनुपयोगी मूल्यों को कानून द्वारा प्रतिबंधित करके समाज में नयी मूल्य संहिता को आविष्कृत किया है।

विज्ञान तथा **प्रौद्योगिकी** के कारण भी सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन आया है। विज्ञान

ने अंधविश्वासों, भावुकता के बदले तर्क एवं बुद्धिवाद को प्रतिष्ठित किया है। इसने जीवन को यथार्थवादी मूल्यदृष्टि दी है। वैज्ञानिक विकास ने जहां हमारे भौतिक जगत् को नयी दिशा दी वहां मानसिक जगत् को उतनी क्रांतिकारी एवं उपयोगी सूझ अभी नहीं दी हैं। फलतः अभी जीवन में अन्तर्विरोधों की दशा विद्यमान है। न तो पूरी तरह से हम परम्परा से मुक्त ही हो सके हैं और न परम्परा के पालक ही।

नवीन मूल्यों को आत्मसात् करने में आधुनिकीकरण में पश्चिमीकरण शहरीकरण एवं औद्योगीकरण की प्रक्रियाएं पनपी हैं जिनसे भारतीय समाज का परम्परागत ढांचा बदला है। इसके फलस्वरूप समाज में अर्थ-संघर्ष की स्थिति भी उपजी जो सामाजिक मूल्य विघटन का कारण बनी।

स्वातंत्र्योत्तर मूल्य विघटन का कारण **नव चिन्तन** और **युवामानसिकता** भी है। नव चिन्तन ने भी नूतन नैतिकता को अपनाया है। नयी पीढ़ी ने सभी ओर विद्रोह का नारा दिया है जिसका कारण उन्हें सामाजिक न्याय न मिलने से उत्पन्न असन्तोष है। वर्तमान दोषपूर्ण शिक्षा पद्धति एवं बेकारी से युवापीढ़ी का व्यक्तित्व विद्रोही हो गया है। सर्वत्र समाज में व्याप्त धांधली और अराजकता तथा अनैतिकता की इस परिस्थिति में युवामानसिकता अगर क्रांति कामी बन जाए तो आश्चर्य भी क्या ?

नयी पीढ़ी ने नैतिक मान्यताओं, प्रेम, यौन सम्बन्धों को सहज प्राकृत धर्मों के रूप में स्वीकारा है। सैक्स को जैवीय आवश्यकता मानते हुए मात्र आनन्द के लिए स्वीकारना नयी पीढ़ी का आग्रह है। नूतन परिवेश में दाम्पत्य जीवन के पारम्परिक मूल्य भी क्षीण हुए हैं।

स्वातंत्र्योत्तर समाज को समाज के बदले व्यक्ति की प्रतिष्ठा मिली है। व्यक्ति को महत्व देने की दृष्टि प्रसाद युग से पनपनी शुरू हुई थी परन्तु स्वाधीनता के पश्चात् के नाटकों में इसकी प्रतिष्टा हो सकी है। व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा में व्यक्ति का 'अहं' प्रमुख कारण रहा है। इस 'अहं' की असंतुष्टि के कारण व्यक्तित्व का विघटन भी हो गया है। यह भी विवेचन में स्पष्ट है।

व्यक्ति स्वातंत्र्य की चेतना का विकास पुरुषवर्ग के साथ २ नारी वर्ग में भी हुआ है। आधुनिक नारी ने परम्परागत मूल्यों मान को नकार कर अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व कायम किया है।

पारिवारिक क्षेत्र में संयुक्त परिवार विघटन के कगार पर है। समाज में आणविक परिवारों का महत्व बढ़ रहा है। आज व्यक्ति की सामाजिकता का क्षेत्र भी बढ़ रहा है।

वैवाहिक जीवन की मान्यताएं बदली है। यद्यपि यह दृष्टि यथार्थवादी मूल्यों की विवेचना के प्रसंग में भी कही गई है परन्तु यह स्थिति अधिक स्पष्ट नहीं थी परन्तु स्वाधीनता के बाद इसमें परिवर्तन आया हैं। अब विवाह कुछ हाल साथ रहने का अनुबन्ध ही माना जाने लगा है। विवाह के बारे में परम्परागत 'जन्म जन्मान्तरों के सम्बन्ध' वाली बात अमान्य हो चुकी है। वैवाहिक जीवन में तलाक ने भी परम्परागत गार्हस्थिक मूल्यों को आघात पहुंचाया

है। समाज में प्रेम-विवाह एवं धर्म की मूल्य संहिताएं प्रभावहीन हो रही हैं।

आधुनिक युग में प्रेम और यौन में पवित्रावादी दृष्टिकोण को नकारा गया है। फ्रायडियन विचारधारा ने इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीति में राष्ट्रीयता के मूल्य को ही अधिक प्रश्रय मिला है। नाटकों में भी यही मूल्य दृष्टि अधिक पनपी है। परन्तु राजनीति में साम्प्रदायिकता, भ्रष्टाचार, अवसरवादिता जैसी कुभावनाओं को नाटकारों ने नकारा है।

वर्तमान युग में अर्थ के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। अर्थ समाज की शिराओं में बहने वाला वह रक्त है जिसके द्वारा समाज की सामाजिक राजनैतिक एवं सांस्कृतिक चेतना स्वस्थ रहती है। आज समाज में आर्थिक विषमता है जिसके कारण समाज में वर्ग-संघर्ष उभरा है। यद्यपि स्वातंत्र्योत्तर भारत में आर्थिक विकास के लिए नये सिरे से योजनाबद्ध आर्थिक विकास की अवश्यकता पर बल दिया गया है तथापि उससे कोई निश्चित परिणाम सामने नहीं आ पाये हैं। देश में बेकारी, भुखमरी, गरीबी अभी भी विद्यमान है।

स्वाधीनता के पश्चात् भारतीय समाज में मूल्य-परिवर्तन की प्रक्रिया व्यापक रूप में नहीं हुई है। वस्तुतः **सांस्कृतिक मूल्यों** में एक प्रकार के संक्रमण की स्थिति है। धर्म पहले के समाज में जो अपने साध्य रूप में था अब साधन रूप में स्वीकारा जाने लगा है। ईश्वर, विश्वासों पर भी भौतिकवादी जीवन दृष्टि ने प्रभाव डाला है।

व्यक्ति स्वातंत्र्य एवं व्यक्तित्व के विकास में आदर्शवादी नैतिकता को तिलाञ्जलि दी गई है। आज की नैतिकता व्यक्ति से अधिक सम्बद्ध है। आज पाप-पुण्य, सुख-दुख, नियति आदि के बारे में परम्परागत मूल्यों में अन्तर आया है। संस्कृति में मानवतावाद एवं वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना भारतीय संस्कृति के गुण हैं जिन्हें आज नव्यमानवतावाद से प्रचारित किया जा रहा है। विवेचन में यह स्पष्ट है।

आज का भारतीय समाज भी अभी मूल्य संक्रमण की स्थिति है। कुछ नये मूल्यों का उदय हो रहा है और कुछ पुराने मूल्य ही पूजे जा रहे हैं। नये मूल्यों में भी अभी कई निर्माण की प्रक्रिया में हैं। अभी स्थिति स्पष्ट नहीं हैं अतः अस्पष्टता या दिशाहीनता दशा का होना भी स्वाभाविक है। परम्परा 'बिखराव' की अवस्था में है। आधुनिकता का आर्कषण आकृष्ट कर रहा है। अतः ऐसी स्थिति में आपेक्षित नूतनता स्वीकार्य होनी चाहिये।

अध्ययन की सुविधा के लिए मूल्यों के फैलाव को विविध परिपार्श्वों में विभक्त कर विवेचित किया है। प्रत्येक अध्याय या उप-अध्याय में सामाजिक, राजनैतिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक सीमाओं में मूल्यों का विवेचन किया है। मूल्य परिवर्तन भारतेन्दु युग से लेकर-द्विवेदी युग, प्रसाद एवं प्रसाद के बाद तथा स्वातंत्र्योत्तर कालों में विभाजित कर, विश्लेषित किया गया है। समाज के विविध पक्षों मेंमूल्य बदलाव को विकासात्मक दृष्टि से दिखाया गया है।

परिवर्तन अनिवार्य विकास क्रम है। जीवन और समाज में यह गति 'चक्रारपंक्तिवत्' है। सामाजिक गति के साथ २ मूल्यों में गतिशीलता रहती है। फलतः जो मूल्य परम्परागत समाज में मान्य थे वे धीरे २ बदलते हुए विघटित भी हो गए हैं और कुछ विघटन के कगार पर हैं। अतः नहीं कहा जा सकता कि जो मूल्य आज समाज में स्वीकार्य हो रहे हैं कल विशृंखलित हो जाएं। मूल्यों के सम्बन्ध में अन्तिम तर्क, तर्क्य ही होगा।

पत्राचार–पाठ्यक्रम निदेशालय
हि० प्र० विश्वविद्यालय
शिमला-५

हिमाचल कला-संस्कृति एवं भाषा अकादमी,

शिमला–१७१००२

अकादमी के प्रकाशन

क्रमांक	पुस्तक का नाम		मूल्य
१.	ऋतम्भरा	हिमाचल के संस्कृत कवियों की कविताओं का संकलन	६.००
२.	श्यामला	हिमाचल के हिंदी कवियों की कविताओं का संकलन	१५.००
३.	माला रे मणके	हिमाचल के पहाड़ी कवियों की कविताओं का संकलन	६.००
४.	तरतीब	हिमाचल के उर्दू शायरों के कलाम का मजमुआ	१५.००
५.	पहाड़ी लोक रामायण	हिमाचल में प्रचलित राम कथा के सम्बन्ध में समीक्षात्मक लेखों और निबन्धों का संकलन	१२.००
६.	छनाट	संस्कृत के महाकवि भास के छः नाटकों का पहाड़ी भाषा में अनुवाद	१२.००
७.	देई जुल्फू	कुल्लू में औटर सिराज क्षेत्र में प्रचलित दशी काव्य के आधार पर विरचित काव्य	६.००
८.	इन्दुकाव्यम्	हिमाचल के सिरमौर और कांगड़ा जनपदों की ऐतिहासिक गाथा के आधार पर विरचित संस्कृत काव्य	१५.००
९.	कथा सरवरी भाग-१	सिरमौर, महासु, कुल्लू जनपदों की लोक कथाएं "पहाड़ी में"	२.५०
१०.	कथा सरवरी भाग-२	चम्बा, कांगड़ा, मण्डी, बिलासपुर जनपदों की लोक "कथाएं पहाड़ी में"	२ ५०
११.	तीन लोक नाटिकाएं	हिमाचल में प्रचलित लोक कथाओं के आधार पर अकादमी द्वारा संयोजित, विरचित, मंचित तीन नाटक	५.००
१२.	हिमाचल के संस्कार गीत	संस्कार लोक गीतों का संकलन	२०.००
१३.	पहाड़ी रचनासार	पहाड़ी के विशिष्ट लेखों का संकलन	१०.००
१४	सोमसी	हिमाचल की कला-संस्कृति व भाषा के शोधपूर्ण लेखों की त्रैमासिक पत्रिका	३.००
		वार्षिक चन्दा	१२.००

१. निदेशक, शिक्षा विभाग, हि० प्र० द्वारा पत्राङ्क ई डी ऐन-एच [8]-6[3]1/75, 24 फरवरी, 1975 के अनुसार प्रदेश के समस्त कालेजों, पाठशालाओं व जिला पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत।

२. प्रदेश की समस्त पंचायतों के लिए निदेशक, पंचायती राज विभाग, हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा स्वीकृत।

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी, पीच ब्लाज़म काटेज, शिमला-2 द्वारा प्रकाशित तथा
'कौसर प्रिंटिंग प्रैस', सोलन (हि० प्र०) द्वारा मुद्रित।